यूरोप की
Private Life

WWW.RAJIVDIXITJI.COM | VIDEO | AUDIO | ANDROID APP

राजीव दीक्षित जी

यूरोप की **Private Life**

यूरोप में बच्चों का पैदा होना परिवार के मुखिया की इच्छा पर निर्भर होता था। यदि परिवार का मुखिया (पिता) चाहे तो बच्चे को मारा जा सकता था, उसकी हत्या की जा सकती थी। बच्चे को लावारिस छोड़ा जा सकता था। बच्चे की गर्भ में ही हत्या की जा सकती थी। गर्भपात कराया जा सकता था। रोमन समय में यह सभी कुछ सामान्य था। ये सभी प्रथायें कानूनी वैधता प्राप्त थीं।

महिलाओं का प्रसव बैठी हुई स्थिति में ही कराया जाता था। इसके लिये एक विशेष किस्म की कुर्सी बनायी जाती थी। पुरुष प्रसव क्रिया को नहीं देख सकते थे। परम्परा यह थी कि जैसे ही बच्चा पैदा हुआ, तो उसे जमीन पर रखा जाता था। फिर बच्चे को जमीन से उठाने का अधिकार सिर्फ पिता को ही होता था। यदि पिता ने बच्चे को नहीं उठाया तो फिर उसे घर के बाहर लावारिस रख दिया जाता था। कोई भी चाहे तो उस बच्चे को उठाकर ले जा सकता था। यदि कोई जानवर भी चाहे तो बच्चे को खा सकता था या उठा कर ले जा सकता था।
यदि कोई पति अपनी पत्नी को आदेश करे तो भी बच्चे को लावारिस छोड़ना पड़ता था। अर्थात पति की ही इच्छा सर्वोच्च, पत्नी की कुछ भी नहीं। यदि पति प्रसव क्रिया के समय उपस्थित नहीं हो तो उस बच्चे को उठा कर ले जा सकता था। यदि कोई जानवर भी चाहे तो नर्स के द्वारा उसे जमीन पर रखा जाता था और फिर जमीन से सबसे पहले उठाने का अधिकार सिर्फ पिता को ही था। यदि किसी कारण पिता उपस्थित नहीं है तो फिर बच्चे को कोई दूसरा उठाकर घर के बाहर रखेगा और उस बच्चे को लावारिस छोड़ दिया जायेगा। फिर कोई भी दूसरा उठाकर उस बच्चे को ले जायेगा। अक्सर लड़की को ही लावारिस अधिक छोड़ा जाता
को कम ही लावारिस छोड़ा जाता था। बच्चों को लावारिस छोड़ने की परम्परा को रोमन समय में और ग्रीक समय में अच्छा माना जाता था और इसे विशिष्ट ही माना जाता था। कई बार गरीबी के कारण भी बच्चों को लावारिस छोड़ दिया जाता था। यदि कोई परिवार अपने बच्चों को शिक्षा दिला सकने में समर्थ नहीं हो तो भी बच्चों को लावारिस छोड़ दिया जाता था। अक्सर परिवारां में बच्चों को रखा भी जाता था तो कम ही बच्चों को में रखा जाता था। यदि किसी परिवार में चार बच्चे हैं तो एक को ही परिवार में रखकर पाला जायेगा बाकी तीनों को अन्य परिवारां में दे दिया जायेगा जहाँ उनके साथ गुलामों का सलूक होगा। लेकिन कई बार सम्पन्न परिवारां में भी बच्चों को लावारिस छोड़ने की घटनायें होती थीं। सम्पत्ति का हिस्सा नहीं देने की (अपने बच्चों को) परम्परा यूरोप में रही है। जो बच्चे छोड़ दिये जाते थे, उनमें से बहुत कम लगभग एक तिहाई ही बच पाते थे, जो बड़े होते थे और बाद में उनके गुलाम बनते थे, जिन्होंने उन्हें पाला और पढ़ाया।

कभी–कभी कोई पत्नी अपने बच्चे को अपने किसी पड़ोसी को देती थी, उसे बड़ा करने के लिये। लेकिन इसकी जानकारी उसके पति को नहीं होती थी। बाद में बड़ा होने पर उस बच्चे को गुलाम का ही दर्जा मिल पाता था। उसे स्वतन्त्र नागरिक नहीं माना जा सकता था। अगर पालन–पोषण करने वाले उस बच्चे को आजाद भी कर दें तो भी उसे आजाद नागरिक

नहीं माना जाता था। यदि किसी व्यक्ति को अपनी पत्नी के चरित्र पर शक हो तो उस पत्नी से पैदा होने वाले सभी बच्चों को लावारिस छोड़ा जायेगा, भले ही वे बच्चे उसी व्यक्ति से ही पैदा हुए हों। रोमन राजाओं के परिवारों में भी बच्चों को लावारिस छोड़ने की यह परम्परा रही। कई बार किन्हीं बातां का विरोध करने के लिये भी बच्चों को लावारिस छोड़ा जाता था। बहुत बड़े समूह में भी एक साथ यह किया जाता रहा। यदि किसी राजा को अपने प्रतिद्वंदी के पैदा होने का शक हो जाये तो उस राज्य में पैदा होने वाले सभी बच्चों को मार दिया जाता था। जो बच्चे लावारिस छोड़े गये हों बड़े होने पर देश चलाने में राज्य चलाने में उनकी कोई भी भूमिका नहीं हो सकती थी। उनका जीवन गुलामों वाला ही हो सकता था। इस तरह के बच्चों को उनके मालिकों का ही नाम (उपनाम) मिलता था। अथवा अपनी मां का उपनाम भी इन लावारिस बच्चों को मिल जाया करता था। लेकिन कभी भी अपने मूल पिता के नाम को ये बच्चे इस्तेमाल नहीं कर सकते थे।

गर्भपात और गर्भ निरोधक तकनीकों का इस्तेमाल भी यूरोप में बहुत पहले से होता रहा। गर्भपात, दवाओं के द्वारा अथवा शल्य–क्रिया के द्वारा होता था। यदि गर्भ ठहरने के बाद किसी पति को को लगे तो पत्नी का गर्भपात कराता था या पत्नी भी स्वयं गर्भपात करा सकती थी। गर्भपात करना और कराना बहुत सामान्य ही था। गर्भ में रहने वाले बच्चे के अधिकार की कभी कोई कल्पना रोमन समय में नहीं रही। गर्भ न ठहर जाये, इसके लिये भी कई तरीके इस्तेमाल किये जाते थे, और उन तरीकों की जानकारी रोमन साधु–संत भी लोगों को दिया करते थे। उदाहरण के लिये गर्भ को रोकने के लिये संभोग के बाद नहाने की और शरीर के सभी अंगों को धोने की परम्परा थी। महिलाओं की नसबंदी भी करायी जाती थी। महिलाओं के मासिक चक्र का भी इस्तेमाल गर्भ रोकने के लिये किया जाता था और उसकी शिक्षा भी लड़कियों–महिलाओं को दी जाती थी। लेकिन गर्भ रोकने के लिये जो भी करना होता था वह महिलाओं को ही करना होता था। पुरुषों के ऊपर इसकी कोई जिम्मेदारी नहीं होती थी।

बच्चों की संख्या एक परिवार में पहली–दूसरी शताब्दी तक तीन से अधिक और 12 तक हो सकती थी। उसके बाद फिर कम बच्चों को रखने की परम्परा आ गयी। जैसे–जैसे गरीबी आई बच्चे भी कम रखने की परम्परा चल पड़ी।
बच्चे को जन्म के तुरंत बाद नर्स को दिया जाता था, वह बच्चा अपनी माँ का दूध भी नहीं पी सकता था। बच्चे के जन्म के बाद उसकी देख–रेख का सारा कार्य नर्स ही करती थी। बच्चों को पढ़ाना, खाना खिलाना जैसे सभी कार्य नर्स ही करती थी। अपने माँ–बाप के साथ खाना खाने का मौका बच्चों को कभी–कभी शाम को ही मिलता था, जब कोई मेहमान आये खाने पर या कोई त्यौहार का दिन हो। नर्स महिलायें तो होती ही थीं, पुरुष भी होते थे। रोम का एक राजा क्लॉडियस् अपने नर्स (पुरुष) से हमेशा घृणा करता था, क्योंकि वह नर्स व्यक्ति क्लाडियस को कोढ़े से पीटता था। अर्थात् नर्सों द्वारा बच्चां की कोड़े से पिटाई भी होती थी।

* जब किसी लड़की की शादी होती थी, तो उसको वैवाहिक जीवन की जानकारी नर्स द्वारा और उसकी माँ के द्वारा ही दी जाती थी। लेकिन यह जानकारी शादी की रात को ही दी जाती थी, उसके पहले नहीं।

* Filial Love is in accordance with nature and Nature is the same thing as Reason, hence it is reasonable for a child to love it's mother, it's nurse and it's pedagogas.

* बच्चों को पालने वाली नर्स को बहुत कड़क होना पड़ता था।

* In Rome, there was a common sense that the world was perverted and decadent. It was also belived that morality consists not in the love or habit of virture but in having the strength to resist vice.

* प्रत्येक में परिस्थितियों को झेलने की शक्ति आ जाये, विरोध करने की शक्ति आये, इस तरह की शिक्षा बच्चों को दी जाती थी। बच्चे वैभव–ऐश्वर्य की गिरावट में फँसें इसलिये उन्हें Rough and tough वातावरण में रखा जाता था। बच्चों को कई बार भूखा छोड़ा जाता था चाहे वे कितने ही रोयें या चिल्लायें। इससे बच्चों के अन्दर कठोरपन आयेगा ऐसा माना जाता था। बच्चों का पिता हमेशा ही कड़क–कठोर होता था। माँ थोडी मुलायम–कोमल हो सकती थी, लेकिन पिता नहीं। बच्चे अपने पिता को 'सर' कहकर ही बुलाते थे। बच्चों और पिता के बीच में बहुत ही अधिक दूरी रहती थी। माँ–बाप और बच्चों के बीच कोई बहुत प्यार नहीं रहता था। वह उतना ही सामान्य होता था, जितना दो पड़ोसी परिचितां के बीच हो सकता था। दो अलग–अलग लोग साथ रहें तो उनमें जितना प्यार हो सकता था, उतना ही माँ–बाप और बच्चां के बीच होता था।

* Tenderness was misplaced in family.

* पिताओं को अक्सर यह सिखाना होता था कि वे अपने बच्चों को प्यार करें। नैतिकता की बातें करके ही यह सिखाया जाता था।

* बच्चों को परिवार में लाने के दो तरीके रहे। एक तो शादी करके और दूसरा किसी से बच्चे को गोद लेकर। जैसे कोई अपनी बेटी को शादी में देता है, उसी तरह से कोई अपने बेटे–बेटी को दूसरे को गोद दे सकता था। जो भी बच्चे को गोद लेगा, वहीं अपने परिवार का नाम भी उस बच्चे को देगा। यदि किसी परिवार में शादी से हुए बच्चे हैं तो भी वह परिवार बाहर से किसी को गोद ले सकता था। जिनके बच्चे नहीं हों, वे तो लेते ही थे बच्चों को गोद। कई बार धन सम्पत्ति को नियंत्रित करने के लिये भी गोद लिया जाता था।

* शिक्षा की व्यवस्था केवल उन्हीं को हो सकती है जो सम्पन्न परिवार से हों। गरीबां को शिक्षा मिल पाना बहुत ही मुश्किल और असंभव सा था। जो बच्चे गुलामी में पलते हों, उन्हें तो शिक्षा मिल ही नहीं सकती थी।

* बड़े पैमाने पर निरक्षरता रही है। अधिकांश लोग लिखने के लिये दूसरों को किराये पर रखते थे। अक्सर सम्पन्न और निरक्षर लोग ऐसा ही करते थे।

* शिक्षा के लिये स्कूल भी होते थे, जो सुबह के समय ही चलते थे। स्कूलों में छुट्टियाँ धार्मिक कैलेण्डर के हिसाब से ही होतीं थीं। लेकिन ये सभी स्कूल शहरां में ही होते थे। 12 वर्ष तक के बच्चे ही स्कूल में पढ़ने के लिये जाते थे। स्कूलों में लड़के–लडकियाँ साथ में ही पढ़ा करते थे। 12 वर्ष के बाद की शिक्षा सिर्फ लड़कों को ही मिल पाती थी। और वह भी उच्च घरों (समपत्तिवान) के लड़कों को। आगे की शिक्षा में शास्त्रीय अध्ययन कराया जाता था। Mythology भी पढ़ाई जाती थी। कभी किसी परिवार के पास अधिक सम्पत्ति हो तो वह किराये पर अध्यापक भी रख सकता था लड़कियों के लिये। अक्सर 12 वर्ष की होते–होते लड़कियों की शादी हो जाती थी। 14 वर्ष की उम्र की लड़कियों को पूर्ण वयस्क माना जाता था। यह माना जाता था

कि अब इस उम्र में आकर लड़कियों को पढ़ना–लिखना क्या? अब तो उनका कार्य सिर्फ किसी पुरूष के साथ बिस्तर में सोने का अधिक होता था। इस 14 वर्ष की उम्र में आकर लड़कियों को सोचने के लिये एक ही काम अच्छे तरीके से सजना संवरना और पुरुषों के साथ हम बिस्तर होना। 12 वर्ष के बाद की शिक्षा में लड़कों और लड़कियों के बीच में अमीर और गरीब जैसा अन्तर आ जाता था। 12 वर्ष की उम्र तक आते–आते लड़कियों को घर में ही बैठना पड़ता था। घर में बैठकर ही वे लड़कियाँ चाहें तो संगीत सीख सकतीं थीं (गाना बजाना और नाचना)। जो लड़की संगीत सीख लेती थी, उसकी कला की प्रशंसा तो होती थी, लेकिन उसे एक अच्छी महिला नहीं माना जाता था। क्योंकि यूरोप की मान्यता में संगीत कोई ऊँची चीज नहीं माना जाता रहा है। प्लेटो तो संगीत के सख्त खिलाफ था। सिर्फ लड़के ही अच्छी शिक्षा लेते थे। किसी स्त्री के पति को ही शिक्षा पूरी हो पाती थी। ऐसा माना जाता था कि अच्छा नागरिक बनने के लिये लड़कों का स्कूल जाना जरूरी है। स्कूल जाने से ही लड़कों को व्यापार करने की, दुनिया को समझने की बुद्धि आती है, ऐसी ही मान्यता यूरोप की रही है। (नोट–यूरोप में लूट–मार को भी व्यापार ही माना जाता रहा है।) सोलह वर्ष का होते–होते लड़कों को अपना कैरियर चुन लेना होता था, वह कुछ भी हो सकता था। किसी भी कैरियर में आने के बार ही उसको प्रशिक्षण मिलता था। जिसे Professional training कहा जाता है। स्कूली शिक्षा में तो सिर्फ नागरिकता की ही शिक्षा होती थी। शिक्षा का अर्थ था– समाज की व्यवस्थाओं और मान्यताओं के अनुकूल विद्यार्थियों को बनाना।

लड़के जब वयस्क हो जाते थे, तो उन्हें Mistress के साथ रखा जाता था, जो उन्हें सेक्स शिक्षा देती थी और अनुभव भी कराती थी। अगर किसी लड़के लिये Mistress के साथ रहना संभव नहीं हो पाता था, (चाहे किसी कारण से – अक्सर निर्धनता इसमं एक बड़ा कारण होती

का जाना एक

सामान्य बात रही है। जवान लड़कों के लिये अक्सर इस बात की छूट होती थी कि वे किसी वेश्या का दरवाजा तोड़कर उसके साथ बलात्कार कर सकते है। अक्सर इस तरह के कार्य लड़कों द्वारा समूह बनाकर किये जाते थे। ये जवान लड़के खेलकूद, शिकार आदि में भी शामिल होते थे। लड़कों के समूह अक्सर सामान्य लोगों के साथ मारपीट करना, महिलाओं के साथ छेड़खानी करना या बलात्कार करना जैसी हरकतें करते रहते थे। उन्हं इस तरह की छूट थी। ऐसा माना जाता था कि वे समाज के अन्य कई कार्य करते हैं, इसलिये उन्हें यह भी छूट है। प्रसिद्ध रोमन सम्राट नीरो भी इसी तरह के जवान गुंडों की एक टोली का सरदार था। अक्सर ही वह गुंडागर्दी के कार्य किया करता था। जवान लड़कों द्वारा इस तरह की गुंडागर्दी (दुकानें तोड़ देना या उन्हं लूट लेना, राह चलते लोगों को अकारण पीट देना) को उनका अधिकार माना जाता था। कभी–कभी किसी गुंडा समूह द्वारा बहुत अधिक बार अत्याचार करने पर उन्हें कोड़े मारने की सजा भी मिलती थी और बाद में कोड़े मारने के बाद उन्हं छोड़ दिया जाता था।

किसी जवान लड़के की शादी हो जाने के बाद वह Mistress को छोड़ देता था। वह Mistress फिर किसी और के साथ रहने लगती थी। शादी के समय होने वाले पति–पत्नी ब्रह्मचर्य का पालन करते होंगे ऐसा सामान्य रूप से सम्भव नहीं होता था। शादी के समय होने वाले पति–पत्नी को एक दूसरे के बारे में अक्सर बताया जाता था कि, उनके शारिरिक संबन्ध कितनी

बार और किसके साथ हुए हैं। दूसरी शताब्दी में यूरोप में यह अभियान चलाया गया कि शारिरिक संबन्ध शादी के बाद ही होने चाहिए। लेकिन इसमं कोई खास सफलता नहीं मिली।

शरीर सुख और आनंद के लिये शारीरिक सम्बन्ध होने की मान्यता यूरोप में रही है। इस सुख और आनंद के लिये विवाहेतर सम्बन्ध रखना या विवाह पूर्व सम्बन्ध रखना, वहाँ के समाज का हिस्सा रहा है। शरीर सुख के लिये और इन्द्रिय सुख के लिये हस्तमैथुन जैसी क्रियायें भी सामाजिक मान्यता प्राप्त रहीं। बीच–बीच में कुछ दार्शनिक लोग इनके विरुद्ध अभियान भी चलाते रहे। लेकिन हस्तमैथुन के विरुद्ध उनका तर्क सिर्फ इतना ही रहा कि, इसके चलते लड़का जल्दी जवान होता है और फिर उससे होने वाली संतान perfect नहीं होती है।

किसी भी लड़के, लड़की का मुख्य पिता ही होता था। बच्चों का भविष्य क्या होगा, यह पूरी तरह पिता ही तय करता था। जवान होने पर लड़कों का कैरियर क्या होगा, यह भी पिता की ही इच्छा पर निर्भर होता था। पिता चाहे तो अपने बच्चों की हत्या भी कर सकता था। अथवा उन्हें मृत्युदण्ड भी दे सकता था। पिता की हैसियत एक जज के जैसी ही होती थी। जो भी कुछ लड़का कमाता था, वह सभी पिता की सम्पत्ति मानी जाती थी, उसे खर्च करने की इच्छा पिता की इच्छा पर ही निर्भर होती थी। शादी हो जाने के बाद भी लड़कों को पिता के अधीन ही रहना होता था। पिता चाहे तो अपनी सम्पत्ति के अधिकार से अपने बेटों को बेदखल कर सकता था। पिता के जीवित रहने तक कोई भी बेटा अपने बाप की सम्पत्ति में अधिकार हासिल करने के लिए कानूनी कार्यवाही भी नहीं कर सकता था। यदि किसी बेटे को अपना कार्य करने के लिये कर्जा भी लेना हो तो यह उस लड़के के बाप को ही मिल सकता था। कर्जा देने वाले व्यक्ति का कर्जा वापस लेने का अधिकार उस समय समाप्त हो जाता था, जब कर्जा लेने वाले लड़के का बाप मर जाता था। 25 वर्ष की उम्र के पूर्व तो किसी भी लड़के को कर्ज लेने के लायक नहीं माना जाता था। (हालाँकि कर्जा बाप के नाम पर ही मिलता था) पिता की मृत्यु होने पर ही बेटों को अपने मन से, अपनी इच्छा से कुछ करने की आजादी मिलती थी। पिता की मृत्यू पर बेटे एक तरह की गुलामी से आजाद होते थे। पिता बहुत ही सख्त माना जाता रहा है यूरोपीय समाज में और मान्यताओं में भी। पिता की मृत्यु के बाद बेटियों को भी अपनी इच्छा से शादी करने का मार्ग खुलता था। यदि पिता जीवित है तो किसी भी बेटी को उसकी इच्छा से शादी करने का अधिकार नहीं होता था। बाप की इच्छा से ही उसकी शादी हो सकती थी। पिता के जीवित रहते बच्चों की स्थिति घर में गुलामों जैसी होती थी। पिता की आज्ञा का पालन नहीं करना देश के साथ गद्दारी करने के बराबर माना जाता था। विवाह करना या नहीं करना, एक व्यवसाय छोड़कर दूसरे में जाना, व्यवसाय करना या घर में ही बैठे रहना, यह सब कुछ पिता के आदेशों पर ही होता था। कोई भी पिता मरने के पूर्व जो वसीयत करता था, वह बहुत ही महत्वपूर्ण मानी जाती। उसी वसीयत से पता चलता था कि उसने किसको अपना उत्तराधिकारी बनाया है। वह अपनी पत्नी पर कितना विश्वास करता है?

के बारे में उसकी राय क्या है? पत्नी के अच्छे या खराब होने का प्रमाणपत्र भी वह वसीयत ही हुआ करती थी। वसीयत में सिर्फ सम्पत्ति के बँटवारे की ही बात नहीं होती थी, बल्कि मरने वाले व्यक्ति के अपने रिश्तेदारों या परिवार के लोगों या मित्रां के साथ सम्बन्ध कैसे थे, यह भी पता चलता था। इसलिये किसी व्यक्ति के मरने के बाद उसका वसीयतनामा सबके सामने पढ़कर सुनाया जाता था। इसका सामाजिक महत्त्व बहुत अधिक था। मरने वाला व्यक्ति

अपने वसीयतनामे में किसी को भी कठोर शब्दां में गाली दे सकता था या उसकी बेइज्जती कर सकता था। साथ ही साथ वह चाहे तो किसी की प्रशंसा भी कर सकता था। यदि किसी व्यक्ति को शासन व्यवस्था या राजा से कोई शिकायत हो और वह शिकायत उस व्यक्ति के वसीयतनामे में आ जाये तो अक्सर राजा या शासन द्वारा उस व्यक्ति की सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। अर्थात् मरने वाले व्यक्ति को राजा की निंदा या शासन की निंदा करने का अधिकार नहीं था।

यूरोपीय समाज में विवाह एक नितांत निजी कार्य अथवा घटना मानी जाती थी। विवाह के लिये कोई समारोह नहीं होता था, और नही विवाह करने वाले स्त्री–पुरुष को किसी Priest आदि के सामने जाना पड़ता था। विवाह का कोई लिखित दस्तावेज भी नहीं होता था। विवाह के समय दस्तावेज एक ही बात के लिये होता था और वह दहेज। स्त्री के घर से मिलने वाला सामान अथवा रुपया पैसा दहेज में माना जाता था। विवाह के बाद होने वाले झगड़ों का निपटारा करने के लिये न्यायाधीश के सामने दहेज के सामानों का ही आधार होता था क्योंकि और कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं होता था। समाज के लोगों को भी किसी के विवाह के बारे में अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं रहता था क्योंकि विवाह के समय कोई समारोह नहीं होता था। सिर्फ पति–पत्नी ही जानते थे कि उनका विवाह हुआ है। या फिर परिवार में कुछ नजदीकी

को मालूम होता था। शादी के बाद होने वाले बच्चे ही अपने पिता के नाम का प्रयोग करते थे। पिता की मृत्यु हो जाने पर इन बच्चों को ही उस पिता की सम्पत्ति का अधिकार मिलता था।

पति–पत्नी के बीच तलाक लेना बहुत ही आसान था। पति–पत्नी में से कोई भी तलाक लेना चाहता हो वह घर छोड़कर चला जाता था। कई बार ऐसा भी होता था, कि एक दूसरे को जानकारी दिये बिना भी तलाक लिया जाता था। यदि किसी स्त्री को तलाक लेना हो तो वह अपने दहेज के सामान के साथ अपने पति का घर छोड़ देती थी। लेकिन तलाक के बाद बच्चे अपने पिता के ही साथ रहते थे। तलाक और पुनर्विवाह यूरोपीय समाज में बहुत ही आसान रहे हैं। लगभग प्रत्येक परिवार में ऐसे बच्चे हुआ करते थे, जो अलग–अलग माताओं की संतान हों। विवाह की पहली रात को पति अपनी पत्नी के साथ कानूनी बलात्कार का अधिकारी हो जाता था। यदि पत्नी की इच्छा न हो तो भी जमीन पर गिराकर अथवा पटककर पति उसके साथ बलात्कार करता था। यह बहुत ही सामान्य प्रथा यूरोप की रही है। विवाह की पहली रात में यह समझना मुश्किल होता था कि पुरुष अपनी किसी गुलाम महिला के साथ बलात्कार कर रहा है अथवा अपनी विवाहिता स्त्री के साथ। यूरोपीय समाज में विवाह क्यों किया जाता था? दहेज लेकर अमीर बनने के लिये। दहेज लेकर अमीर बनना यूरोप में बहुत ही सम्मानजनक माना जाता रहा है। दूसरा एक कारण विवाह करने का यह रहता था कि नागरिक बनने के लायक बच्चे पैदा होंगे। क्योंकि जो बच्चे बिना विवाह के पैदा होते थे, अथवा किसी गुलाम स्त्री से पैदा होते थे, वे नागरिक नहीं हो सकते थे। इस तरह के अनधिकृत बच्चे किसी पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी भी नहीं हो सकते थे। कोई विवाहित पुरुष चाहे तो अपनी पत्नी को किसी दूसरे व्यक्ति को दे सकता था और मन होने पर उसे वापस अपने पास बुला सकता है। घर में जैसे वस्तुयें होती हैं, उसी तरह की स्थिति पत्नी की भी होती थी। कोई पति यदि कोई महत्वपूर्ण फैसला लेना चाहता है, तो उस बारे में वह अपनी पत्नी के साथ कभी कोई बहस नहीं करता था, या पत्नी की कोई सलाह नहीं लेता था। वह अक्सर अपने दोस्तों की सलाह

ही लेकर फैसला किया करता था। परिवार में पत्नी की स्थिति पूरी तरह अपने पति के आदेशों का पालन करने की होती थी। यदि किसी व्यक्ति की पत्नी उसे धोखा देकर भाग जाये तो समाज में उस व्यक्ति की निंदा होती थी। उस निंदा से बचने के लिये वह व्यक्ति अपनी पत्नी के बारे में समाज के लोगों को बताता था कि वह (पत्नी) कितनी अधिक बदचलन थी। अपनी पत्नी को बदचलन और खराब चरित्र की घोषित करके ही वह व्यक्ति समाज की निंदा से बच सकता था। यदि किसी पिता की बेटी भी इसी तरीके से घर से भाग जाये या शादी के पूर्व गर्भवती हो जाये तो, और वह व्यक्ति समाज के उच्च वर्ग का हो, तो उसे भी अपनी बेटी के बदचलन और खराब चरित्र की होने की घोषणा करनी होती थी। गुलाम वर्ग के व्यक्ति को इस तरह की घोषणा करने की जरूरत नहीं होती थी। जो भी पत्नी अपने पति को छोड़कर जाती थी, वह अपने साथ दहेज का पूरा सामान ले जाती थी। उच्च वर्ग के लोगों में तलाक बहुत ही सामान्य बात थी। पति जिस पत्नी को तलाक देता था, बाद में फिर उससे शादी कर सकता था, यह घटना भी बहुत सामान्य होती थी। ऐसा भी सामान्य रूप से बार–बार होता था कि किसी व्यक्ति ने अपनी पत्नी को तलाक दे दिया, बाद में उस महिला ने किसी और से शादी कर ली, फिर वह प्रथम पति चाहे तो दोबारा उस महिला से शादी कर सकता था, अगर उस महिला का दूसरा पति उसे तलाक दे दे। समाज में ऐसे पुरुष और ऐसी महिलायें होना बहुत ही असंभव सा था जिनके जीवन में सिर्फ एक महिला और सिर्फ एक पुरुष आया हो।

परिवार में महिलाओं का कार्य घर के काम करना और बच्चों को पैदा करना और फिर उनको सँभालना ही हुआ करता था। जो पति–पत्नी बिना तलाक और किसी झगड़े के लम्बे समय तक साथ रहते थे, उनकी समाज में प्रशंसा और चर्चा हुआ करती थी। यूरोप के इतिहासकारां ने ऐसे दम्पत्तियों की एक सूची बनायी है। जब किसी पति–पत्नी को शुभकामनायें दी जाती थीं तो कुछ इसी तरह की "आपके जीवन में अलगाव नहीं हो", "आपके जीवन में झगड़े परेशानी पैदा नहीं करें"। किसी पति को शुभकामना दी जाती थी तो इस तरीके से कि –"आपकी पत्नी आपको खुश रखे"। लेकिन इस तरह की शुभकामना किसी पत्नी को नहीं दी जाती थी, क्योंकि पत्नी के साथ ठीक से व्यवहार करना, यह परिवार में बिल्कुल जरूरी नहीं माना जाता था। समाज में रहकर एक अच्छा पड़ोसी होना, एक जिम्मेदार और अच्छा मेहमानबाज होना, अपने गुलामों का अच्छा मालिक होना, अपनी पत्नी के प्रति दयालु होना आदि ये सभी अच्छे गुण माने जाते थे। यदि कोई बाँझ हो तो उसे छोड़ देना एक सामान्य घटना होती थी। परिवार में पत्नी की स्थिति और नौकर गुलामों की स्थिति लगभग एक जैसी ही होती थी। राजनैतिक कार्यां में, सेना के कामों में या फिर उद्योग व्यापार के कामों में भी, महिलाओं पर पाबंदी थी।

किसी मालिक का अपने गुलामों के प्रति व्यवहार ऐसा होता था कि मालिक की इच्छा हो तो वह गुलामों को पीट सकता था, उनकी हत्या भी कर सकता था। गुलामों को हमेशा मालिक की आज्ञा का ही पालन करना होता था। हालाँकि सभी गुलाम उनके मालिकों के परिवार के ही सदस्य होते थे। मालिक अपनी इच्छा से गुलामों को प्यार भी कर सकता था और उनसे घृणा भी कर सकता था। मालिक चाहे जितना भी क्रुर और निर्दयी हो, लेकिन गुलामों के लिए उसकी की सेवा करना और उसकी आज्ञा मानना यही नैतिकता मानी जाती थी। गुलाम अपने मालिक की सम्पत्ति माने जाते थे। जैसे किसी के पास खेत है, जमीन है, घर है, मशीनें हैं

अथवा रुपये–पैसे हैं, और ये सभी सम्पत्ति के हिस्से माने जाते हैं, इसी तरह गुलाम भी सम्पत्ति के ही हिस्से माने जाते थे। यदि किसी मालिक के गुलाम मर जायें अथवा भाग जायें तो माना जाता था कि उस मालिक को सम्पत्ति का नुकसान हुआ है। गुलामों को सम्पत्ति के स्तर में सबसे नीचा माना जाता था। ऐसा माना जाता था कि गुलाम हो जाना भाग्य से तय होता है, और प्राकृतिक है। गुलामों के प्रति व्यवहार करने के लिये कोई नियम–कानून नहीं थे। सब अधिकार और इच्छा मालिक की होती थी, उसी के अनुसार व्यवहार चलता था। किसी मालिक में अपनी महिला गुलाम के साथ शारीरिक सम्बन्धों का होना सामान्य बात थी और इनसे पैदा होने वाले बच्चे भी गुलाम बनते थे। उन बच्चों का भी मालिक वही होता था, जो उनकी माँ का मालिक होता था।

यूरोप की अर्थव्यवस्था, राजनीति और सामाजिक जीवन के कार्यों में गुलामों का योगदान काफी रहा है। यूरोप में बच्चों को भी लावारिस छोड़ने की परम्परा रही है। अक्सर यूरोप में परिवारां में बच्चे, पैदा होने के बाद घर के बाहर या किसी सार्वजनिक स्थान पर लावारिस छोड़ दिये जाते थे। बाद में गुलामां का व्यापार करने वाले व्यापारी इन्हीं बच्चों को उठाकर ले जाते थे और उन्हं बेचा करते थे। बच्चों को लावारिस छोड़ने की सबसे बड़ी वजह यूरोप की गरीबी रही। कई बार जवान लड़के–लड़कियाँ भूख से मरने से बचने के लिये अपने आप को बेच दिया करते थे। कुछ महत्त्वाकांक्षी जवान लड़के–लड़कियाँ भी अपने आप को इसलिये बेचा करते थे कि उन्हं किसी बड़े आदमी की सेवा में रहने का मौका मिलेगा। इससे उनकी प्रतिष्ठा गुलामों के बीच बढ़ती जाती थी। शासन चलाने वाले उच्चपद अधिकारियों की मदद के लिये भी गुलाम रखे जाते थे। इन गुलामों को खेती के काम में भी इस्तेमाल किया जाता था। जिस मालिक के पास गुलामां की संख्या अधिक होती थी वहाँ पर गुलामों के ऊपर निगरानी रखने वाला एक सुपरवाइजर हुआ करता था। इन सभी गुलामों को एक साथ रखा जाता था। इस सुपरवाइजर की पत्नी गुलामां के लिये खाना बनाने का कार्य करती थी। इसमें गुलाम भी मदद करते थे। अधिकांश कारीगर भी गुलाम हुआ करते थे। खेती की जमीन का अधिकांश हिस्सा समाज के उच्चवर्गीय लोगों के अधीन ही होता था। इस खेती को करने वाले छोटे–छोटे स्वतंत्र किसान होते थे। उन छोटे किसानों के पास गुलाम होते थे, जिनकी मदद से खेती की जाती थी। समाज के उच्चवर्गीय लोग अपनी खेती करने के लिये जमीन छोटे किसानां को दिया करते थे। कई बार गुलामों को दण्ड देने के लिये जेलों में (या जेल के तरीके से) रखा जाता था। ये जेल मालिकों के होते थे। उन गुलामों के हाथ–पैरां में बेड़ियाँ डालकर हथकड़ी लगाकर ही रखा जाता था। अक्सर गुलामों को सजा तब मिलती थी, जब वे अपने मालिक की आज्ञा का पूरा पालन नहीं करते थे अथवा अपने मालिक के साथ दुर्व्यवहार करते थे। यूरोप की कुल काम करने वाली आबादी का 25 % गुलाम ही होते थे। जो गुलाम खेत में काम नहीं करता था, वह घरों में घरेलू नौकर की तरह से कार्य करता था। कई उच्चवर्गीय लोगों के घरों में दर्जनों नौकर हो सकते थे। इन घरेलू नौकरां का कार्य अपने मालिकों के कपड़े बदलना, कपडे साफ करना, घर की सफाई, खाना बनाना आदि–आदि होता था। कभी जरूरत पड़ने पर इन गुलामों से जासूसी का कार्य भी कराया जाता था। ये जासूसी अपने मालिकों के लिये करते थे। संगीतकार, अन्य कलाकार, लेखक, कवि, नाटककार, व्याकरण आदि पढ़ाने वाले अध्यापक आदि भी गुलामों के बीच में से ही बनते थे। अर्थात् ये सभी लोग भी गुलाम हुआ करते थे।

की चिकित्सा सेवा करने वाले भी गुलामों के बीच से निकलकर आते थे। उन्हें डॉक्टर बनने के बाद दासता से मुक्त कर दिया जाता था। मालिक और गुलामों के बीच में बहुत अधिक असमानता होती थी। गुलामों के आपसी सम्बन्धों में भी काफी असमानता होती थी। गुलामों के भी कई वर्ग हुआ करते थे। मालिक और गुलामों के बीच असमानता रखना जरूरी माना जाता था। मालिक गुलामों के साथ बोलचाल में सामान्य रूप से कठोर शब्दां का और गालियों का इस्तेमाल किया करते थे। गुलामी की इस प्रथा को कानूनन मान्यता प्राप्त थी। यूरोप में आज से 50 साल पहले तक यदि कोई अच्छा व्यवसायी, कलाकार काली चमड़ी वाला हो तो उसके साथ भी गुलामों जैसा ही व्यवहार किया जाता रहा है। यूरोप की मान्यता ऐसी रही है कि गुलामों को प्रकृति ने घटिया और निकृष्ट ही बनाया है। कानून रूप से भी गुलामों को बहुत नीचा माना जाता था। यदि किसी बड़े उद्योगपति या व्यवसायी के यहाँ काम करने वाला कोई गुलाम इस हैसियत का हो, जिसे किसी व्यवसाय के कार्य से समझौते करने का भी अधिकार हो तो भी मालिक द्वारा उसे कभी भी बेचा जा सकता था। मालिक किसी गुलाम को सजा देने के लिये उसे जिन्दा भी जला दे सकता था। अथवा किसी किराये के व्यक्ति से जलवा सकता था। यूरोप में सुधारवादी आन्दोलनों के द्वारा भी यह नहीं कहा जाता था कि गुलामां को आजाद करो बल्कि कहा यह जाता था कि गुलामों के साथ कुछ अच्छा व्यवहार करो। गुलामों के आपसी झगड़ों का निपटारा करने का अधिकार उनके मालिक को ही होता था। जो भी गुलाम अपने मालिक की जान बचाने में स्वयं मर जाये उसे बहुत अच्छा माना जाता था और उसकी प्रशंसा की जाती थी। गुलामों के लिये यह प्रशंसनीय माना जाता था कि वे अपने मालिक के लिये अपनी जान खतरे में डालें। जो भी गुलाम शराब पीता था या काम कम करता था, उसे बहुत खराब माना जाता था। यदि कोई गुलाम किसी दूसरे गुलाम को शराब पीना सिखाये तो दण्ड का भागी होता था। यदि कोई गुलाम आज्ञाकारी नहीं है, तो दोष मालिक को दिया जाता था। मालिक की खुशी के लिये गुलामां को कुछ भी करना पड़ता था। यदि मालिक चाहे तो किसी गुलाम की पत्नी को उसके साथ बिस्तर में भी सोना पड़ता था। कई बार मालिक अपने गुलामों को आँखें फोड़ सकता था, उनके हाथ काट सकता था।

यूरोप में अधिकांश लोग किराये के घरों में रहते थे। बहुत कम ऐसे लोग होते थे जो अपने बनाये हुए घरों में रहते थे। अपने निजी घरों में रहना बहुत सम्पत्ति वाले लोगों के लिये ही संभव था। अधिकांश घरों में मुख्य देखभाल गृहस्वामिनी (मालिक की पत्नी) ही करती थी, लेकिन आदेश गृहस्वामी का ही चलता था। घर के नौकरां/गुलामां को प्रतिदिन सुबह मालिक को दिन भर में निपटाना होता था। कई बार घरों में गृहस्वामिनी और गुलामां के बीच काम के बँटवारे को लेकर झगड़ा होता था। मालिकों के सामने गुलामों को अच्छे कपड़े पहनने, पालिश किये हुए जूते पहनने का अधिकार नहीं था। कई बार तो गुलामों को दाँत साफ करने का भी अधिकार नहीं था। गृहस्वामिनी जब भी घर से बाहर निकले तो उसके साथ नौकरानी जरूर साथ में होती थी।

पत्नी को विधवा होने के बाद सम्पत्ति का अधिकार मिल जाता था। बाद में वह चाहे तो फिर से शादी कर सकती थी। विधवा महिलाओं के साथ समाज का व्यवहार हमेशा संदेह का ही होता था। विधवा अपने गुलामों के साथ भी शारीरिक सम्बन्ध रख सकती थी। कोई पुरुष

विधुर होने पर दूसरी महिला को बिना शादी किये घर में रख सकता था अथवा दूसरी शादी कर सकता था। कोई व्यक्ति चाहे तो एक से अधिक महिलाओं को रखैल के रूप में रख सकता था। गुलामों को विवाह करने का अधिकार सामान्यतः नहीं होता था। रखैल महिला से पैदा हुए बच्चों को अपनी माँ का नाम ही इस्तेमाल करना होता था। वे अपने पिता का नाम इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। घर के बच्चों को खेलने के लिये कुत्ते–बिल्ली, पक्षी आदि रखे जाते थे। पति अपनी पत्नी के साथ अच्छा व्यवहार करे, यह बिल्कुल भी जरूरी नहीं होता था। यदि कोई पत्नी बच्चे पैदा करने में असमर्थ हो तो उसे छोड़कर दूसरी किसी महिला को रखा जा सकता था। पति चाहे तो दूसरी महिला को शादी करके घर में रख सकता था, चाहे तो बिना शादी किये ही उसे घर में रख सकता था। इस मामले में पूर्व पत्नी की इच्छा या अनिच्छा का कोई सम्मान नहीं होता था। एक पति अपनी पत्नी से ऐसे ही बातें करता था, जैसे वह किसी गुलाम के साथ करता था। चाहे वे बातें किसी के सामने कही जायें या अकेले में की जायें।

कई बार ऐसा भी होता था कि गुलाम मिलकर अपने मालिक की हत्या भी कर दिया
को अपने गुलामों से भी डर लगता था। गुलाम मालिक के परिवार का ही हिस्सा होते थे। मालिक उन्हं दण्ड भी देता था और फिर प्यार भी करता था। प्रत्येक मालिक की गुलामों से अपेक्षा होती थी, कि सभी गुलाम आज्ञाकारी हों। हरेक मालिक का गुलामां से सम्बन्ध दोहरा होता था अर्थात् कभी सम्बन्धों में प्यार अधिक, तो पल भर में फिर घृणा भी होती थी। प्यार और घृणा दोनां मालिक और गुलामां के बीच के सम्बन्धों में साथ–साथ रहान करते थे। मालिक चाहे जितना भी हिंसक और निर्दयी हो, लेकिन गुलामों को आज्ञाकारी होना ही जरूरी होता था। ऐसा माना जाता था कि गुलामों को ही हुकुम दिया जा सकता है, मशीनां को नहीं। नैतिकता की माँग भी गुलामों से ही की जाती थी। अपने मालिकों के प्रति स्वामिभक्ति, मालिक की सेवा करना, मालिक के हर आदेश का पालन करना, इन सभी को गुलामों के लिये नैतिक माना जाता था। यदि मालिक की इच्छा हो तो वह अपने किसी गुलाम को स्वतन्त्र कर सकता था। लेकिन स्वतन्त्र होने के बाद भी उस गुलाम को अपने पुराने मालिक को सुबह–शाम अभिवादन जरूर करना पड़ता था।

जिन गुलामों को मालिकों के द्वारा स्वतन्त्र किया जाता था, वे गुलाम अपने अलग घरों में रह सकते थे। यदि कोई व्यवस्था नहीं हो सके तो फिर अपने पुराने मालिक के साथ भी एक स्वतन्त्र गुलाम की हैसियत से रह सकते थे।

कोई भी मालिक अपनी पत्नी को घर के काम–काज की जिम्मेदारी इसलिये देता था कि महिला को ठीक–ठाक रखने के लिये उसे कुछ काम में लगाये रहना चाहिए। एक परिवार में घरेलू नौकर (गुलाम), पुराने गुलाम (जिन्हें बाद में स्वतन्त्र कर दिया गया) कुलपिता और उनकी वैधानिक पत्नी, बेटा–बेटी और कुछ दर्जन ऐसे लोग जो प्रतिदिन बैठक में आकर अपने मालिक को अभिवादन कर सकें या मरने पर श्रद्धांजलि दे सकें, हुआ करते थे। यह परिवार जो बनता था, उसमें पारिवारिक भावना दिखाने के लिये अधिक होती थी, वास्तविकता में बहुत ही कम हुआ करती थी। परिवार में पिता या कुलपिता ही मुख्य होता था। पिता को न्यायिक अधिकार होते थे। अर्थात पिता ही घर में किसी को सजा देने या माफ करने का अधिकारी होता था। पिता ही सम्पत्ति का मालिक, गुलामों का मालिक हुआ करता था। पिता की मृत्यु के बाद ही पुत्र परिवार का मुखिया हो सकता था। परिवार में सभी भाइयों का साथ रहना पैसे की और

सुविधा की दृष्टि से ही तय होता था। प्रत्येक परिवार की आकांक्षा अपना निजी घर बनाने की रहती थी। लेकिन अपना निजी घर बहुत ही कम परिवारां के पास हुआ करता था। अधिकांश परिवारां के पास अपना निजी घर होना असंभव होता था, इसी कारण अधिकांश परिवार किराये के घर में ही रहकर अपना जीवन चलाते थे। अकसर परिवारों के बच्चे अपना जीवन अलग से बिताने के लिये परिवार से अलग ही रहा करते थे। पिता के कठोर निर्देशों एवं आदेशों का पालन करने से बचने के लिये ही जवान लड़के–लड़कियाँ परिवार से अलग होकर अपना जीवन बिताते थे। शादी के बाद नवदम्पत्ति तो अधिकांश अलग ही रहते थे। बच्चे चाहें पिता से कितने ही दूर और अलग रहें, लेकिन परिवार (कुल) का मुखिया तो पिता ही होता था, और अलग सभी अधिकार भी उसके ही अधीन होते थे। यदि परिवार से अलग रहने वाले जवान लड़के–लड़कियों से कोई पड़ोसी की सम्पत्ति का नुकसान होता था, तो उसकी पूरी जिम्मेदारी उन बच्चों (लड़के–लडंकियाँ) की ही होती थी, उनका पिता उसकी जिम्मेदारी नहीं लेता था। इस सम्बन्ध में जों होती थी, उनका पिता उसकी जिम्मेदारी नहीं लेता था। इस सम्बन्ध में भी कानून सजा होती थी, वह सजा भी उन बच्चों को ही भुगतनी पड़ती थी। अधिकांश बच्चों का अपने पिता के साथ जो बन्धन होता था, वह पैसे–सम्पत्ति (पैतृक सम्पत्ति) तक ही सीमित रहता था। बच्चों को उनके पिता की सम्पत्ति मिलेगी, यही एक मुख्य अपेक्षा बच्चों की अपने पिता के प्रति होती थी।

का बँटवारा परिवार के सदस्यों के बीच किया करता था। जैसे गुलामों को क्या काम करना है? बच्चों को क्या करना है? घर की महिला को क्या करना

का बंटवारा हर सुबह ही होता था। हिसाब के कार्य में मदद करने के लिये वह किसी कर्मचारी को रख सकता था। कुछ

के बँटवारे को लेकर झगड़े भी हुआ करते थे। चर्च के फादरों की मान्यता थी कि शादी करना, उचित नहीं है। अर्थात चर्च के फादर (अर्थात चर्च) ही शादी के विरोधी हुआ करते थे। चर्च के पादरियों (फादरों) की मान्यता थी, कि शादी का अर्थ एक महिला के प्रभुत्व को स्वीकार कर लेना है। दूसरे शब्दों में इस मान्यता को ऐसे भी कहा जाता था, कि शादी करना, किसी महिला के आरोपों को झेलने के लिये पुरूष को बाह्य होना। डाक्टरों की मान्यता थी कि महिलाओं को स्वस्थ रखने के लिये उन्हं घर के काम–काज में लगाये रखना चाहिए। घर की महिलाओं के काम कुछ इस तरह के होते थे, जैसे खाना बनाने वाले गुलामों (नौकरां) पर दृष्टि रखना, खरीददारी करने वाले कर्मचारियों की खरीददारी पर निगाह रखना, घर में वस्तुओं को यथास्थान रखना या रखवाना आदि–आदि। जिन महिलाओं के पास परिवार में कोई कार्य नहीं होता था, उन्हं अकसर समय बिताने के लिये तकली चलाने का (सूत कातने) कार्य करके अपना समय बिताना होता था। परिवार में पति–पत्नी एवं बच्चों को वैसे कुछ भी नहीं करना पड़ता था। उन्हें कपडे पहनाने, जूते पहनाने जैसे कार्य भी गुलाम ही किया करते थे।

के लिये भी गुलाम ही होते थे। कई घरों में परिवार के सदस्यों के दाँत साफ करने का काम भी गुलाम ही किया करते थे। रोमन समाज में घर बहुत बड़े नहीं होते थे। घरों में खुला स्थान तो बिल्कुल भी नहीं होता था। आज के समय में बड़े शहरों में जिस तरह के अपार्टमेंट होते हैं, उसी तरह के घर रोमन समय में हुआ करते थे। घर में जगह कम और रहने वाले अधिक होते थे। अधिकांश साधारण परिवारों में तो पति–पत्नी के लिये भी

अलग से कमरा नहीं होता था। पत्नी के कमरे में नौकरानी और पति के कमरे में नौकरां के सोने की व्यवस्था होती थी। यदि परिवार बहुत अमीर हो, और रहने के लिये घर बहुत बड़ा हो तो ही पति–पत्नी को एक साथ अलग कमरे में सोने की व्यवस्था हो सकती थी। साधारण
परिवारां में जब पति–पत्नी को साथ सोना होता था उस दिन घर के गुलामों को घर के दूसरे कोनों में भेज दिया जाता था। या फिर कई बार किन्हीं दूसरे स्थानों पर जाकर पति–पत्नी को
अपनी शारीरिक जरूरतों को पूरा करना पड़ता था, यदि उन्हं नितान्त एकान्त की जरूरत लगती हो। अधिकांश परिवारों में पति–पत्नी के बीच होने वाली बातों को गुलाम सुन सकते थे और अक्सर ही सुना करते थे। उस समय के रोमन व्यंग्यकार अक्सर कहा करते थे या लिखा करते थे कि–"मालिकों के गुलाम अक्सर ही दरवाजों के पास में खड़े होकर झिर्री में से झाँकते रहते हैं और अपने मालिकों को हस्तमैथुन करते हुए या अपनी पत्नी/नौकरानी के साथ संभोग करते हुए देखते रहते हैं।" गुलामों की उपस्थिति एक तरह से लगातार निगरानी करने के बराबर ही
हुआ करती थी। लेकिन गुलामों का कोई भी महत्त्व नहीं हुआ करता था। गुलामों की उपस्थिति को आसानी से अनदेखा किया जा सकता था। उस जमाने का प्रसिद्ध रोमन कवि होरेस अक्सर ही कहा करता था कि–"मैं अकेले ही जाने का (टहलने–घूमने या किसी कार्य के लिये) अभ्यस्त हूँ"। लेकिन उस कवि को जाते हुये देखने वाले अक्सर ही देखा करते थे कि उस कवि के साथ उसके दो–तीन नौकर पीछे–पीछे चल रहे होते थे। अर्थात होरेस जैसे कवि को इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता था कि उसके साथ नौकर भी चल रहे हैं। नौकरां के साथ–साथ चलने के बाबजूद, होरेस के लिए उपस्थिति का कोई महत्त्व नहीं था। परिवार के मालिकों को अक्सर अपने प्रेमी/प्रेमिका से मिलने का स्थान मालूम नहीं हुआ करता था, तो गुलाम इसमें मदद किया करते थे। उन गुलामों को अक्सर ही इन सभी स्थानां का पता होता था। गुलाम अक्सर ही इस तरह की बातां पर आपस में चर्चा किया करते थे। मालिकों को अपने प्रेमी/प्रेमिका से मिलने के लिये अक्सर ऐसे घर किराये पर लेने पड़ते थे, जो उनके किसी ऐसे ही मित्र के होते थे, और वे मित्र स्वयं भी इसी तरह के व्यभिचार में लगे होते थे। कई बार गिरिजा-घरों में बने हुये कक्षों का भी इसी कार्य में प्रयोग किया जाता था। गिरिजाघरों के कक्षों का इस कार्य में प्रयोग इसलिये किया जाता था कि गिरिजाघरों की पवित्रता लोगों को चुप रहने के लिये मजबूर करती थी। बड़े एवं प्रतिष्ठित घरों की महिलायें घर से अकेले कभी भी बाहर नहीं
निकलतीं थीं। अक्सर ही उनके साथ नौकर/नौकरानियाँ रहते थे। ये नौकर, नौकरानियाँ एक तरह से उनके लिये चलती–फिरती जेल के समान ही रहते थे। ग्रीक महिलाओं को भी अक्सर उनके पतियों द्वारा ताला बंद करके घरों में रखा जाता था। जब वे बाहर जाती थीं, उनके
आस–पास भी इसी तरह नौकर–नौकरानियों या गुलामों की पहरेदारी रहा करती थी। इन
महिलाओं का अन्तःखाना (जनान खाना) भी एक जेल की तरह का ही होता था। जिन महिलाओं को अपनी इज्जत और प्रतिष्ठा की बहुत अधिक चिंता रहती थी, वे स्वयं अपने पति को इस बात के लिये कहा करती थीं कि उनके पति के बाहर जाने की स्थिति में उन महिलाओं को ताला लगाकर या लाक–अप में बंद किया जाय। कई बार तो पति के मौजूद रहने पर भी महिलाओं को अक्सर रात्रि में लाक–अप में बंद कर दिया जाता था। घरों के लड़के भी बिना नौकर या गुलामों के बाहर नहीं निकलते थे। पुराने रीति–रिवाजों को मानने वाली कोई महिला

यदि अकेले बाहर जाने पर अपनी मर्यादा भी भंग करे तो बिना पर्दे (घूँघट) के तो नहीं ही सार्वजनिक स्थानों पर जाती थी।

किसी परिवार की माँ होना एक सम्मानजनक जेल माना जाता था। इसी सम्मानजनक जेल (परिवार) की मर्यादा के लिये समर्पित होना, एक आदर्श माँ का फर्ज होता था, और ऐसी आदर्श माँ पर गर्व किया जा सकता था। अभिजात्य वर्ग की बेटियों (लड़कियों) को यदि उनके पति छोड़ दें या वे स्वयं अपने पतियों को छोड़ें तो फिर वे अपने पिता के ही घरों में जाती थीं। वे अपनी माता के घरों को वापस नहीं जाती थीं। क्योंकि घर माता का होता ही नहीं था, घर तो पिता का ही माना जाता था। घर का गौरव पिता के ही साथ जोड़ा जाता था, माता के साथ नहीं। अभिजात्य वर्ग में गर्व की बात धन सम्पत्ति और पत्नियों में ही निहित रहती थी। पत्नियां का अपना भाग्य ही होता था जो उनके पतियों की सम्पत्ति नहीं बन पाता था। अन्यथा, बाकी सभी भौतिक वस्तुयें और सम्पत्ति जो महिलाओं की होती थी, विवाह होने पर वह सभी सम्पत्ति (वस्तुयें आदि भी) उनके पतियों की सम्पत्ति हो जाती थी। अभिजात्य वर्ग की महिलाओं को वसीयत करने का अधिकार होता था। हालॉकि वे उसी सम्पत्ति की वसीयत कर सकती थीं, जो सम्पत्ति उन्हं दहेज में मिली हो। कभी–कभी अभिजात्य वर्ग की महिलायें अपने पति की सत्ता एवं प्रभुत्व के सामने समर्पण करने से इंकार भी कर देती थीं। लेकिन यह अपवादस्वरूप ही होता था। इसी तरह अपवादस्वरूप कुछ अभिजात्य वर्ग की महिलाओं को राजनैतिक भूमिका निभाने का भी मौका मिल जाता था। लेकिन इसके लिये उनके पिता का प्रभावशाली राजनैतिक प्रभुत्व होना जरूरी होता था। अभिजात्य वर्ग की महिलायें (खासकर वे जिनके पिता के पास बहुत सम्पत्ति हो और राजनैतिक दबदबा हो) अपने पति से संतुष्ट नहीं होने पर या तो पति से अलग निर्वासित जीवन बिताती थीं, अथवा आत्महत्या भी कर लेतीं थीं। यदि किन्हीं कारणों से किसी महिला के पति को निर्वासित होना पड़े तो वह महिला अपने वैवाहिक हितां (स्वार्थों) की रक्षा करने में सक्षम होती थी।

यदि कोई महिला विधवा हो जाये तो फिर उसके नजदीकी रिश्तेदार तत्काल ही उसके चारों ओर गुलामों/नौकरों की नियुक्ति करते थे। माना यह जाता था कि ये गुलाम ही उस विधवा को भटकने से बचाएंगे। विधवा महिलाओं का प्यार या तो व्यभिचार माना जाता था, या फिर उसे बलात्कार माना जाता था। लेकिन यदि धन–सम्पत्ति की मालिक कोई विधवा महिला ऐसा करे तो (विधवा होने के बाद किसी को प्रेम करे या किसी से शारीरिक सम्बन्ध रखे) उसे व्याभिचार नहीं मानते थे। बल्कि यह उसके लिये आवश्यक है, ऐसा माना जाता था, क्योंकि उसका कोई मालिक नहीं होता था, पति की मृत्यु हो जाने के कारण। किसी सम्पत्तिशाली महिला के विधवा हो जाने पर उसके आगे–पीछे ऐसे लालची पुरुष लग जाते थे, जो उसकी सम्पत्ति को हथिया सकें। यदि वह महिला (धन–सम्पत्ति की मालिक) चाहे तो फिर से विवाह कर सकती थी। दूसरी ओर यदि कम उम्र की लड़की हो तो उसके प्रेम सम्बन्धों के बारे में छुपाया जाता था। कम उम्र की लड़कियों को हमेशा शक की नजर से देखा जाता था, कि कहीं उसके प्रेम सम्बन्ध तो नहीं हैं। अक्सर यह शक उस लड़की के आस–पास चौकीदारी करने वाले गुलामों या नौकरां के प्रति सबसे पहले होता था। मान्यता यह थी कि बिना किसी मालिक के कोई लड़की या महिला अपना जीवन कैसे बिता सकती है। चर्च के फादर विधवा महिलाओं के बारे में बहुत ही विद्वेषपूर्ण, दुर्भावनापूर्ण नजरिया रखते थे। धनी–सम्पन्न महिलायें यदि अपने

पति या प्रेमी से सेक्सकर्म में संतुष्ट नहीं हों तो उन पतियां या प्रेमियों को बदल दिया जाता था। इसलिये धन–सम्पत्ति की मालकिन महिलाओं के प्रेमियों अथवा पतियों को, बिस्तर में उन महिलाओं को संतुष्ट करना बहुत महत्त्व का होता था और इसके लिये उन पतियां/प्रेमियों को बहुत मेहनत करनी होती थी और कष्ट उठाना पड़ता था।

यदि कोई पुरुष विधुर (बिना पत्नी के) हो जाये तो वह अपनी गुलाम नौकरानी के साथ सेक्स सम्बन्ध रख सकता था या दूसरी पत्नी ला सकता था। विधुर पुरुष चाहे तो रखैल भी रखता था। इन रखैलों की समाज में हमेशा ही निन्दा की जाती थी। रखैल का अर्थ ऐसी स्त्री से था, जो बिना विवाह के किसी पुरुष के साथ नियमित रूप से बिस्तर में सोती थी और उस व्यक्ति से शारीरिक सम्बन्ध रखती थी। समाज के धन–सम्पत्ति रखने वाले पुरुष अपने हरम में एक से अधिक रखैलों को रखते थे। समाज में जो पुरुष राजा होते थे, वे तो अक्सर ही एक साथ एक से अधिक महिलाओं के साथ हम बिस्तर होते थे। रोमन राजा क्लाडियस तो इसके लिये काफी मशहूर रहा। आम लोगों में भी (साधारण लोगों) रखैलों के साथ रिश्ता रखना मान्य था, यदि वह रखैल टिकाऊ हो और विशिष्ट हो। पुरुष अपनी रखैलों के साथ शादी नहीं करते थे, क्योंकि रखैलों का सामाजिक स्तर नीचा माना जाता था। साधारण लोगों में रखैलों को रखने की परम्परा थी। लेकिन साधारण तथा एक पुरुष एक बार में एक ही रखैल रख सकता था।

में रखैल तभी रखी जाती थीं, जब किसी भी कारण शादी असंभव हो। अर्थात् शादीशुदा साधारण लोगों में रखैल रखना कल्पना के भी बाहर था। राजाओं और समाज के प्रतिष्ठित (पैसे वाले) लोगों को एक से अधिक रखैल रखने तथा पत्नी होने के बावजूद रखैल रखने की आजादी थी। राजा या समाज के महत्त्वपूर्ण लोग अपनी मृत्यु के समय होने वाली वसीयत में अपनी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा अपनी रखैलों के नाम भी किया करते थे। कई राजाओं के समाधि लेखों (राजा की मृत्यु के बाद उसे जिस स्थान पर दफनाया जाता था, वहाँ कुछ लिखा जाता था, उसे समाधिलेख कहते थे। आज भी यह यूरोप–अमरीका में प्रचलित है। सामान्य रूप से इस समाधि–लेख में राजा के जीवन का ही वर्णन होता था) में उनकी रखैलों का भी नाम दिया जाता था। राजाओं के अलावा समाज के धनी–सम्पत्तिवान पुरुषों के समाधि लेखों में भी, उनकी रखैलों का वर्णन किया जाता था। समाज में इस रखैलपन का कोई भी वैधानिक आधार नहीं होता था।

के पास अनेकों रखैलपन के मामले आने के बावजूद वे न्यायाधीश भी रखैलपन को वैधानिक या कानूनी मान्यता देने के खिलाफ ही रहते थे। रखैलपन को एक संस्थागत मान्यता भी नहीं रही। किसी रखैल से पैदा हुये बच्चे को भी अपने पिता का नाम नहीं मिलता था। वह अपनी माता के नाम का ही प्रयोग करता था। रखैलों से पैदा हुए बच्चां को बास्टर्ड कहा जाता था। जिन बच्चों को पिता का नाम नहीं मिला, उनकी सामाजिक हैसियत नहीं होती थी। उन बास्टर्ड बच्चों की सामाजिक हैसियत गुलामों के बच्चों के ही बराबर होती थी। रखैलों की सामाजिक हैसियत वेश्याओं से थोड़ी ऊँची होती थी, क्योंकि रखैलों के सम्बन्ध एक ही पुरुष के साथ होते थे। अनेक पुरुषों से शारीरिक सम्बन्ध रहने के कारण वेश्याओं की सामाजिक हैसियत रखैलों से भी नीची होती थी। यदि किसी रखैल से पुरुष शादी कर ले तो उसकी हैसियत थोड़ी ऊँची हो जाती थी। फिर वह रखैल उस विवाह के जोड़े (वस्त्रों) को पहनने की अधिकारिणी होती थी, जिसे घर की पत्नी पहनती थी। लेकिन ऐसी रखैल महिलाओं की मृत्यु

समाधि पर जो लेख लिखे जाते थे, उनमें रखैल के पति को संरक्षक एवं पति लिखा जाता था। अर्थात् रखैल महिला की शादी हो जाने के बाद भी उसकी हैसियत वह नहीं हो पाती थी, जो वैधानिक पत्नी की होती थी। हालाँकि रखैलों को उनके पुरुषों के परिवार का अंग ही माना जाता था। जैसे परिवार में पत्नी, बच्चे, धन–सम्पत्ति, गुलाम, नौकर आदि होते थे, वैसे ही रखैल भी उनमें शामिल होती थी। पालतू जानवर आदि भी परिवार में शामिल होते थे। किसी पुरुष की रखैल मर जाये तो कोई फर्क उस पुरुष के ऊपर नहीं पड़ता था। वह पुरुष किसी दूसरी रखैल की तलाश कर लेता था। या फिर अपनी गुलाम स्त्रियों के साथ हमबिस्तर होना शुरू करता था। भले ही उस पुरुष की पत्नी को इससे कोई मानसिक तकलीफ या शारीरिक तकलीफ होती रहे, वह पुरुष अपनी शारीरिक संतुष्टि के लिये एक रखैल से दूसरी और दूसरी से तीसरी की ओर भागता रहता था। यदि रखैल न हो तो फिर अपनी गुलाम स्त्रियों के पीछे भी भाग सकता था। इस तरह के पुरुषों को maid chaser कहा जाता था। दूसरी ओर यदि किसी रखैल का मालिक मर जाय या उसकी हत्या कर दी जाय तो उस रखैल के लिये भारी मुसीबत हो जाती थी। उस रखैल को अपने मालिक की मौत पर उसी तरह से रोना चिल्लाना होता था, जैसे कोई पत्नी अपने पति की मौत पर रोती या चिल्लाती थी। इन रखैलों, गुलाम महिलाओं पर रोमन समय में काफी अधिक कवितायें, कहानियाँ लिखी गयी हैं। गुलाम स्त्रियों एवं रखैलों से पैदा हुए बच्चों को मालिक अपने बच्चे की तरह स्वीकार नहीं करता था। यह गुलामी की प्रथा का अलिखित और अनकहा नियम था। यदि किसी गुलाम स्त्री या रखैल को कोई मालिक दासता से मुक्त कर दे या फिर उस गुलाम स्त्री या रखैल के बच्चे को (जो उसी मालिक से पैदा हुआ है) भी दासता से मुक्त कर दे तो भी वह मालिक उस मुक्त हुए बच्चे को अपना बच्चा नहीं कह सकता था, और न ही उसे गोद ले सकता था। साथ ही साथ मालिक उस बच्चे का पक्ष भी नहीं ले सकता था, क्योंकि यह सब दास प्रथा के कानूनों एवं नियमों के तहत ही होता था। रोमन समय में कुछ समय तक यह भी परम्परा रही कि यदि मालिक को अपनी किसी गुलाम महिला अथवा रखैल का बच्चा बहुत पसंद आ जाये, जो दिखने में भी सुन्दर हो, उस बच्चे को वह मालिक अपने घर में पत्नी या अन्य बच्चों के साथ रख लेता था। हालाँकि ऐसा करना दास प्रथा के नियमों के विरुद्ध था। उस गुलाम या रखैली बच्चे को पढ़ने के लिये स्कूल भी भेजा जा सकता था। घर के अन्य सदस्यों के साथ वह डिनर टेबल पर बैठ सकता था। हालाँकि शिक्षा लेने का अधिकार गुलामों को नहीं होता था। लेकिन मालिक चोरी छिपे यह कर सकता था कि वह गुलाम बच्चे को अपने परिवार में पाले एवं उस बच्चे को शिक्षित कराये। बाद में उस गुलाम बच्चे के बड़े हो जाने पर वह अपने मालिक के लिये सेक्स उद्देश्यों की पूर्ति करने का साधन भी बन सकता था। छोटा बच्चा होने पर खेलने का एक खिलौना या मन बहलाने का साधन एवं बड़ा होने पर सेक्सपूर्ति का साधन, यही दो अन्तिम गति उस गुलाम बच्चे की हो सकती थी, जो अपने मालिक के घर में रहकर भले ही पाला –पोसा गया हो।

भद्र पुरुषों के लिये यह सामान्य सी बात थी, वे अपनी सेक्सपूर्ति के लिये लड़कों का प्रयोग करें। हालाँकि भद्रपुरुषों की इस हरकत पर उनके अधीन काम करने वाले कर्मचारी मजाक कर सकते थे आपस में, लेकिन अपने मालिक के साथ सम्मान से ही पेश आते थे। जूलियस सीजर का हत्यारा ब्रूटस हमेशा ही अपनी सेक्सपूर्ति के लिये लड़कों को रखता था।

ब्रूटस को एक कमसिन लड़का इतना पसंद था कि उसने उस लड़के की मूर्ति को अपने घर में जगह–जगह रखा हुआ था। रोमन सम्राट डोमीशियन और एंटीनूस दोनों ही लड़कों की मदद से सेक्स इच्छा की पूर्ति करते थे। इन दोनों सम्राटां के दरबादी कवियों ने उन सभी लड़कों के ऊपर कवितायें लिखीं हैं, जिन लड़कों का प्रयोग सेक्सपूर्ति के लिये इन दोनां सम्राटों ने किया था। दरबारी कवियों ने सेक्सपूर्ति के लिए प्रयोग होने वाले इन लड़कों की शारीरिक सुन्दरता और चेहरे की कमनीयता का खूब रस लेकर वर्णन किया है। रोमन सम्राट जेलस का अपनी पत्नी से अक्सर ही इस बात पर झगड़ा होता था कि जेलस एक कम उम्र के लड़के के साथ अपनी सेक्सपूर्ति करता था। अक्सर रोमन सम्राटां की पत्नियां को अपने पतियों पर निगरानी रखनी पड़ती थी, लेकिन वे पत्नियाँ अपने पतियों को लड़कों से शारीरिक सम्बन्ध रखने से रोक भी नहीं सकती थीं। ये लड़के राजाओं तथा समाज के अन्य सम्भ्रान्त लोगों के लिये प्यालों में शराब भरने का एवं उनकी अन्य खातिरदारी करने का भी काम किया करते थे। इन्हीं लड़कों को समारोह के समय या मेहमानों के आने पर खाने की मेज पर भी सेवा करनी होती थी।
जिस तरह से मेहमानखाने में अनेकों सजावटी सामान होते थे, उसी तरह से खूबसूरत लड़के भी होते थे। सेक्स कार्यों में इस्तेमाल होने वाले इन लड़कों की जैसे ही मूँछें आनी शुरू होती थीं, वैसे ही इनका मालिक इन के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाना शुरू करता था। मूँछें निकलते ही इन लड़कों की जिन्दगी बदल जाती थी। अक्सर ये लड़के अपनी इस स्थिति से दुखी रहते थे, और अक्सर खाली समय में विलाप करते रहते थे। मालिकों के लिये ये लड़के एक तरह से खेलने और आनन्द लेने के खिलौने जैसे या पालतू जानवरों जैसे होते थे। उन दिनों में सबसे महत्त्वपूर्ण खिलौने जीवित पशु–पक्षी या गुलाम बच्चे ही हुआ करते थे। कभी –कभी इन जीवित खिलौने से से प्रेम भी हो जाया करता था। इन जीवित खिलौनों की मृत्यु होने पर (जिनमें गुलाम लड़के भी शामिल थे), दूसरे खिलौने जो गुलामी से मुक्त हो जाते थे वे अपने मालिकों के घरों में नहीं रहते थे। लेकिन नियमित रूप से ये स्वतंत्र हुए गुलाम अपने पूर्व मालिकों को सलाम करने के लिये आते थे। ये स्वतन्त्र हुए लोग व्यापारी हो सकते थे, कारीगर हो सकते थे या फिर कोई दुकानदार हो सकते थे। लेकिन इन मुक्त हुए गुलामों की संख्या 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होती थी। यह 5 प्रतिशत संख्या कुल जनसंख्या का ही होती थी। लेकिन इस 5 प्रतिशत को समाज में आसानी से पहचाना जा सकता था। सामान्य रूप से दुकानदार और व्यापारी वही हुआ करते थे, जो गुलामी से आजाद हो जाते थे। वैसे तो सभी व्यापारी और दुकानदार आजाद गुलाम नहीं होते थे, लेकिन सभी आजाद गुलाम जरूर व्यापारी और दुकानदार हो सकते थे। इसलिये इस व्यापारी और दुकानदार वर्ग की एक खास छवि होती थी। इस खास छवि के कारण इन व्यापारी और की समाज के अन्य लोगों के साथ दुश्मनी भी होती रहती थी, क्योंकि अक्सर व्यापारी और दुकानदार बहुत ही कंजूस, कृपण एवं शोषक माने जाते थे। साधारण लोगों को यह बात स्वीकार्य नहीं थी कि आजाद गुलाम, जो व्यापारी और दुकानदार बन गये, उनके पास इतनी सम्पत्ति हो जाय कि वे अमीर हो जाएं। इन आजाद गुलामों का समाज में स्तर हमेशा दोहरा होता था। एक ओर बहुत ही घटिया स्तर, तो दूसरी ओर अपने से भी घटिया स्तर पर रहने वाले गुलामों से ऊँचा स्तर इन आजाद गुलामों का हुआ करता था। हमेशा ही इन आजाद गुलामों का जीवन दो स्तर पर ही बीतता था। उसी के अनुसार उनकी संस्कृति विकसित हुई।

अक्सर यह देखा जाता था कि ये आजाद हुए गुलाम विवाह करने की अपेक्षा रखैलों को रखना ही पसंद करते थे। लेकिन एक आजाद गुलाम पुरुष और आजाद गुलाम महिला के बीच में विवाह भी होता था। विवाह होने के बाद दोनां पति–पत्नी होकर समाज में थोड़ी सम्मानजनक स्थिति प्राप्त कर लेते थे। कभी–कभी बहुत परेशानी की स्थिति भी आती थी, जब एक गुलाम पुरुष और गुलाम महिला में शारीरिक सम्बन्ध हो जाए और फिर बच्चे पैदा हों। बाद में वे दोनों पुरुष और महिला अपने मालिक की गुलामी से आजाद हो जाएं, तो फिर अपने गुलामी के समय में पैदा हुए बच्चों को वे अपना नहीं सकते थे। उन बच्चों की स्थिति गुलाम बच्चों की ही रहती थी। यदि पति–पत्नी चाहें तो गुलामी के समय में पैदा हुए बच्चों को, अपने पूर्व मालिक से वापस खरीद सकते थे, लेकिन उन बच्चों का कोई भी कानूनी अधिकार नहीं हो सकता था। उन बच्चों को बास्टर्ड का ही दर्जा रहता था। यह सब गुलाम प्रथा के कानूनों के तहत ही होता था। गुलाम प्रथा के कानूनों की सख्ती के सामने प्रेम, भावना आदि सब बेकार ही था। समाज में इन आजाद गुलामों की स्थिति काफी कुछ अनिश्चितता वाली ही हुआ करती थी। आजाद गुलामों की हैसियत समाज के सम्भ्रान्त, भद्रलोक या मालिकों से नीची तथा अन्य गुलामों से ऊँची रहती थी। इन आजाद गुलामां की समाज में कोई वैधानिकता नहीं होती थी, हालाँकि ये आजाद गुलाम पैसा होने पर आरामतलबी या विलासिता का जीवन जी सकते थे। ऐम में आज भी कई समाधि या मकबरे ऐसे हैं जो इन आजाद गुलामां के ही हैं, जिन पर सुन्दर चित्रकारी की गयी है। अधिकांशतः ये आजाद गुलाम समाज के सम्भ्रान्त लोगों की ही नकल करते थे जीवन में। इन आजाद गुलामों को समाज में आधा नागरिक (अर्ध नागरिक) ही माना जाता था। कभी भी किसी भी परिस्थिति में ये आजाद गुलाम नागरिक नहीं हो सकते थे और भद्रलोक वर्ग में प्रवेश नहीं कर पाते थे। अच्छे तरीके से परिष्कृत नहीं हो पाने के कारण इन आजाद गुलामों का मूल उद्‌गम ही अच्छा नहीं माना जाता था। जो परिष्कृत नहीं, वह नागरिक होने का अधिकारी नहीं, यह मान्यता यूरोप में रही। साथ ही जो मालिक नहीं है वह भी नागरिक होने का अधिकारी नहीं है, यह भी यूरोपीय मान्यता रही है। गुलामों के बच्चों को शिक्षा लेने का, स्कूल जाने का अधिकार यूरोप में नहीं रहा है। भद्रलोक के लोगों द्वारा आजाद किये गये इन गुलामों को शरणार्थी जैसा ही माना जाता था। ये आजाद गुलाम जब भद्रलोगों के जीवन आचरण की नकल करते थे, तो इन भद्रलोगों द्वारा इस नकल को अश्लीलता, आडंबर और मिथ्याभिमान करार दिया जाता था। इन आजाद हुए गुलामों का अपना कोई सामाजिक वर्ग नहीं हुआ करता था, जिससे कि उनकी कोई नई पहचान बन सके। ये आजाद गुलाम अपने आप को किसी वर्ग के गौरव से जोड़कर दिलासा भी नहीं दे सकते थे। इन आजाद गुलामों की अपनी कोई वंश परम्परा भी नहीं हो सकती थी। एक ही पीढ़ी में इन आजाद गुलामों का वंश समाप्त हो जाता था। किसी आजाद गुलाम का वैधानिक विवाह के बाद पैदा हुआ बेटा नागरिक हो सकता था लेकिन अपने पिता के नाम को आगे नहीं बढ़ा सकता था। रोमन सेना में की भर्ती अधिक की जाती थी, जो किसी आजाद गुलाम के बेटे हों। कभी–कभी इनमें से कुछ बेटे ऊँचे अधिकारी भी बन जाया करते थे, लेकिन उसके लिये शर्त रहती थी कि उनके पास भरपूर पैसा, धन, सम्पत्ति होनी चाहिए। समाज में ऐसे लोगों के आगे बढ़ने की कोई संभावना नहीं होती थी, जो आजाद पैदा हुए हों लेकिन गरीब हों। इन आजाद पैदा हुए गरीबां से अच्छी सामाजिक स्थिति तो उन आजाद गुलामों की होती थी, जो सम्पत्तिशाली हों। आजाद

गुलामों को समाज में आगे बढ़ने की संभावना सम्पत्ति और धन के रहने पर ही होती थी। यह धन और सम्पत्ति उन्हें उस व्यापार के करने से ही मिला करता था जो आजाद होने के बाद उन गुलामों द्वारा शुरू किये जाते थे। जब किसी गुलाम को आजाद किया जाता था, तो उसके लिये कई कठोर शर्तें थीं। इन शर्तों को किसी भी स्थिति में आजाद गुलाम को पूरा करना पड़ता था। आजाद गुलामों द्वारा किया जाने वाला व्यापार भी इन्हीं शर्तों का एक हिस्सा होता था। रोमन समाज के सम्भ्रान्त लोग अपने आजाद गुलामों पर अधिक विश्वास करते थे, बनिस्बत उन नागरिकां के, जो रोमन समाज के ही मुक्त नागरिक होते थे, लेकिन गरीब होते थे। अर्थात् गरीब नागरिकां पर भरोसा करने से अच्छा आजाद गुलामों पर भरोसा करना रोमन भद्र लोगों को अधिक ठीक लगता था, क्योंकि आजाद गुलाम हमेशा ही अपने मालिकों के प्रति वफादार रहता था।

कोई मालिक अपने गुलामों को कब आजाद करता था? इसके तीन कारण होते थे। पहला कारण जब गुलाम बहुत अधिक बीमार हो जाएं और उन गुलामों के जीवित बचने की कोई संभावना नहीं बची हो। यदि कोई गुलाम बीमार हो, लेकिन उसके मरने की संभावना नहीं हो तो मालिक उसे आजाद नहीं करता था। अर्थात् मृत्यु के आने पर ही गुलामों को आजादी दी जाती थी। यदि कोई गुलाम आजादी के बाद मृत्यु से बच गया तो यह उस गुलाम की किस्मत अच्छी रही, ऐसा माना जाता था। मालिकों के लिए मरते समय गुलामों को आजाद कर देना एक तरह की तसल्ली जैसा या सांत्वना देने जैसा होता था। दूसरा कारण गुलामों को आजाद करने का तब होता था, जब मालिक स्वयं मरने वाला हो। यदि मालिक की मृत्यु नजदीक हो तो वह अपने मरने से पूर्व गुलामों को आजाद कर सकता था, या फिर अपनी वसीयत में यह लिखवा सकता था कि उसकी (मालिक) मृत्यु के बाद गुलामों को आजाद कर दिया जाय। वसीयत में कोई मालिक अपने परिवार के लोगों को जिस तरह धन सम्पत्ति बाँटा करता था, वैसे ही अपने गुलामों को आजादी बाँट दिया करता था। जो मालिक वसीयत में अपने गुलामों को आजाद करने की घोषणा करके जाता था, उसे बहुत ही आदर्श और अच्छा मालिक माना जाता था। मालिकों द्वारा अपने गुलामों को आजाद करने का तीसरा कारण व्यापार से सम्बन्धित होता था। यदि कोई मालिक अपने किसी व्यवसाय में अपने गुलामां का एजेंट के रूप में प्रयोग करे और वह से मालिक को बहुत आर्थिक लाभ कराये, तो इनाम स्वरूप मालिक खुश होकर उस गुलाम को आजाद कर सकता था। यदि मालिक बहुत अधिक खुश हो जाये तो उस आजाद गुलाम को अपने व्यवसाय या व्यापार में हिस्सेदार बना सकता था, अतः ऐसी परिस्थिति में उस गुलाम को आजाद होना ही रहता था। इन आजाद गुलामों के पास यदि कोई संसाधन, उत्पादन या धन–सम्पत्ति नहीं हो तो जिन्दगी को चलाना बड़ा ही कठिन होता था। कभी मालिक अपने किसी गुलाम से बहुत प्रसन्न हो जाये, तो वह अपनी वसीयत में गुलाम के लिये कुछ अचल सम्पत्ति जैसे जमीन का कोई हिस्सा या मकान आदि भी दे सकता था। ऐसा माना जाता था कि गुलाम व्यापारी का भविष्य सुरक्षित रहता था। लेकिन अक्सर ही ऐसा होता था कि आजाद होने के बाद अधिकांश गुलाम अपने मालिकों के घरों में ही और मालिकों के साथ ही रहना पसंद करते थे। वे आजाद होने के बाद भी अपने के वे सभी काम करते थे, जो गुलाम होने पर किया करते थे। फर्क इतना ही होता था कि आजाद हो जाने के बाद उन गुलामों का सम्मान थोड़ा बढ़ जाता था। यह भी होता था

यदि आजाद गुलाम अपने मालिक के साथ किसी व्यापार या व्यवसाय में हिस्सेदारी करता था, तो उसकी इज्जत थोड़ी और बढ़ जाती थी। व्यापार में होने वाले लाभ में उस आजाद गुलाम की भी हिस्सेदारी होने लगती थी। सामान्य रूप से गुलाम यदि धन कमाने की स्थिति में हों तभी मुक्त होते थे। उन गुलामों को कभी भी आजादी नहीं मिल पाती थी, जो अपने मालिक की वित्तीय व्यवस्था को सँभालते थे। अर्थात् जो गुलाम अपने मालिक के खजांची होते थे, उन्हें आजादी नहीं दी जाती थी। हालाँकि इन खजांची गुलामों को अपने मालिकों की ओर से प्रताड़ना काफी कम ही मिलती थी। हाँ यदि किसी गुलाम खजांची ने अपने मालिक के पैसों में कोई हेराफेरी या चोरी कर ली तो फिर भयंकर प्रताड़ना और सजा मिलती थी, जिसमें कोड़े से पिटाई होना सामान्य होता था। कुछ आजाद गुलाम तो आजाद होने के बाद भी अपने मालिकों के साथ ही मालिकों के घरों में रहते थे, लेकिन कुछ गुलाम आजाद होने के बाद अपनी व्यक्तिगत नई जिन्दगी शुरू करते थे, और अपना स्वयं का घर बनाते थे। लेकिन अपना घर बना लेने के बाद भी ये आजाद गुलाम अपने पूर्व मालिक के पास अभिवादन करने जरूर जाते थे। यह सम्बन्ध भले ही प्रतीकात्मक होता था, लेकिन होता जरूर ही था। इन आजाद गुलामों का जो पूर्व मालिक होता था, वह बाद में संरक्षक हो जाता था। इसलिये आजाद गुलाम अपने पूर्व

अर्थात् संरक्षकों का सम्मान करने में धन्यता मानते थे। अपने पूर्व मालिकों का सम्मान करना आजाद गुलामों द्वारा एक तरह से अपने पूर्व मालिकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिये होता, क्योंकि उनके मालिकों ने गुलामां को आजाद जो कर दिया। यदि कोई आजाद गुलाम अपने पूर्व मालिक के प्रति सम्मान और कृतज्ञता ज्ञापित नहीं करे तो उस आजाद गुलाम को बहुत ही लांछन लगाये जाते थे। ऐसे आजाद गुलाम को नमकहराम माना जाता था। जो भी नमक हराम होता था या समाज द्वारा घोषित कर दिया जाता था, उस पर भयंकर अत्याचार किये जाते थे। ये अत्याचार इतने खौफनाक होते थे कि इन्हें देखकर किसी भी आजाद गुलाम को नमकहरामी करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। हालाँकि समाज में नमकहरामी को एक बहुत बड़ी समस्या माना जाता था। आजाद गुलामों को अपने पूर्व मालिकों की एवं मालिक परिवार की चापलूसी भी करनी पड़ती थी, अपने मालिक की महानता का भी वर्णन करना होता था (भले ही मालिक महान हो या नहीं हो)। समाज दो तरह की विचारधारणा पर बँटा हुआ था। एक तो सभ्य नागरिक समाज, जिसमें राजा, सम्राट, भद्रलोक, कुलीन वर्ग के लोग आते थे। दूसरा समाज गुलामों, नौकरां या आजाद हुए गुलामों का होता था। गुलामों द्वारा मालिक के प्रति निष्ठावान होना ही दूसरे समाज की अन्तिम नियति मानी जाती थी। स्वतन्त्रता या आजादी निर्विवाद मानी जाती थी, लेकिन कुलीन वर्ग के लिये। गुलाम समाज के लिये तो अपने मालिकों के प्रति वफादार रहना, मालिकों की सेवा करना और गुलामी में रहना, यही अभीष्ट था। यदि गुलाम अपने मालिक के प्रति वफादार नहीं रहे तो उस गुलाम का मालिक गुलाम को छत से नीचे फेंक सकता था, कोड़ों से पिटाई कर सकता था (सामान्य रूप से कोड़ों में लोहे के कील लगे रहते थे), और यदि मारते–मारते गुलाम मर जाए तो मालिक के लिये कोई मुश्किल नहीं रहती थी। यदि गुलाम अपने मालिक के अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना चाहे या कहीं शिकायत करे, ऐसा संभव नहीं था। दूसरी ओर सम्भ्रान्त वर्ग के लोगों के विरुद्ध (जिन्हें नागरिक माना जाता था) कोई हाथ उठाये, यह बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं था। नये–नये आजाद हुए किसी गुलाम के पारिवारिक एवं वित्तीय हितों का काफी ध्यान मालिकों द्वारा रखा जाता था। मालिकों

को इस बात का ध्यान रखना होता था कि दासतामुक्ति के बाद किसी आजाद गुलाम को, उतने से अधिक काम नहीं करना पड़े, जितना कार्य वह गुलामी के दिनों में करता था। दासतामुक्ति की शर्तें भी इतनी कड़ी नहीं होती थीं कि उन शर्तों के कारण आजादी बस नाम की ही रह जाये। आजाद होने के बाद की शर्तों के तहत गुलाम को शादी करने का अधिकार होता था, अपने बच्चे पैदा करने का अधिकार होता था, और ये दोनों अधिकार उस गुलाम का मालिक ही दिया करता था। यदि कोई आजाद गुलाम वही व्यापार या व्यवसाय करना चाहे जो उसका पूर्व मालिक करता था, तो इतनी छूट उस आजाद गुलाम को होती थी। अर्थात् गुलाम व्यवसाय में अपने मालिक का प्रतिद्वन्दी बने तो यह हो सकता था, और वह मालिक इसे रोक नहीं सकता था। आजादी देने की शर्तों एवं नियमों के तहत यह संभव होता था। दासतामुक्ति के समझौते के तहत आजाद गुलाम भौतिक रूप से आजाद ही होता था, लेकिन प्रतीक रूप में उस गुलाम का पूर्व मालिक ही संरक्षक रहता था। उसके प्रति आजाद गुलाम के कुछ कर्तव्य माने जाते थे। उदाहरण के लिये अपने पूर्व मालिक का यथोचित सम्मान करना, पूर्व मालिक के प्रति दया भाव रखना, पूर्व मालिक के प्रति समय–समय पर कृतज्ञता ज्ञापित करना आदि–आदि। आजाद हुए गुलाम को प्रतिदिन सुबह–शाम अपने मालिक से अभिवादन करने के लिये उपस्थित होना ही पड़ता था। मालिक को इस बात का पूरा अहसास रहता था कि आजाद गुलाम के ऊपर उसका (मालिक का) का प्रभाव कम हो चुका है, इसलिये वह शर्तों के बहाने उस आजाद गुलाम को डरा–धमकाकर रखता था, ताकि उस आजाद गुलाम का महत्त्व कहीं मालिक से अधिक न हो जाए। इसलिये दासतामुक्ति के समझौते के तहत आजाद होने के बाद भी गुलाम को सुबह–शाम मालिक के सामने झुककर प्रणाम करने के लिये जाना पड़ता था। आजाद हुए गुलामों के लिये इन सभी शर्तों का पालन करना बोझ के समान ही होता था, लेकिन यह सब करना उनकी मजबूरी थी, जिससे कोई छुटकारा नहीं था। लेकिन आजाद होने पर थोड़े से दूसरे सुख और सम्मान भी मिल जाते थे। गुलामों की आजादी के बाद की स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर कभी–कभी उनका मालिक उन आजाद गुलाम को अपने साथ खाना खिला सकता था। हालाँकि खाने के समय (डिनर टाइम) अक्सर आजाद गुलामों के साथ मालिक के वर्तमान गुलामों का झगड़ा होता ही था। इस झगड़े का मुख्य कारण अपने मालिक के प्रति वफादारी दिखाने की कोशिश करता था, लिहाजा झगड़ा हो जाता था। दोनों ही वर्ग एक वर्तमान गुलामों का (दूसरा वर्ग) आजाद हुए गुलामों का, अपने मालिक का ध्यान अपनी–अपनी ओर आकर्षित करने में एक दूसरे से मुकाबला करते थे। यदि आजाद गुलाम थोड़े सम्पत्तिवान हो जाएं तो यह झगड़ा और भी बढ़ता था, क्योंकि वर्तमान गुलाम सभी गरीब ही होते थे। इन दोनां समूहों के बीच आपस में घृणा भी बहुत अधिक होती थी। वह घृणा जब बाहर फटकर आती थी, तो कभी–कभी झगड़ा भयंकर भी होता था। मालिकों का अपना दरबार होता था, जिसमें गुलाम, आश्रित एवं आजाद गुलाम (जो मालिकों के प्रति वफादार हों) शामिल होते थे। शाम के भोजन के समय (डिनर टाइम) अक्सर यह दरबार लगा करता था। समाज में जो शामिल होने के लिये मुख्यत: तीन–चार शर्तें पूरी करना आवश्यक होता था जैसे, अपना घर तथा अन्य अचल सम्पत्ति होनी चाहिए, गुलाम होने चाहिए, दरबार होना चाहिए तथा धन भी भरपूर होना चाहिए। गुलामों तथा आजाद गुलामों के अतिरिक्त दरबार में एक आश्रित वर्ग भी हुआ करता था। इस आश्रित वर्ग में वे लोग आते थे जो आजाद (मुक्त)

होते थे, लेकिन किसी मालिक के दरबार में श्रद्धा रखते थे, मालिक का सम्मान करते थे, अक्सर उस मालिक को अभिवादन करने के लिये जाया करते थे। इस आश्रित वर्ग में धनी भी हो सकते थे, निर्धन भी हो सकते थे। इस आश्रित वर्ग को अपने मालिक का अनुयायी वर्ग भी माना जाता था। आश्रित और अनुयायी एक दूसरे के पर्यायवाची ही थे। इस अनुयायी वर्ग के लोग ताकतवर या कमजोर दोनां ही हो सकते थे। कई बार आश्रित या अनुयायी अपने मालिक से भी अधिक ताकतवर हो सकता था। इस आश्रित या अनुयायी वर्ग में चार तरह के लोग होते थे। पहले, वे जो सार्वजनिक जीवन में अपने संरक्षक या मालिक की मदद से कुछ कैरियर बनाना चाहते थे या कुछ करना चाहते थे। दूसरे, वे जिनके सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक हितां को सुरक्षित रखने में संरक्षक (मालिक) मदद कर सकते थे। तीसरे, वे जिन्हें अपने संरक्षक की मदद से कवि, कहानीकार, चित्रकार या कोई कलाकार बनना होता था। चौथे, वे जो अपने मालिक की ही वसीयत में अपना नाम दर्ज कराना चाहते थे, अर्थात् मालिक की वसीयत के दावेदार होना चाहते थे, इस वर्ग के लोग उतने ही ताकतवर हो सकते थे जितना ताकतवर मालिक (संरक्षक) होता था। इस चौथे तरह के आश्रितों–अनुयायियों में राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी और राज्यतंत्र को चलाने में लगे हुए लोग ही अधिक होते थे। जिस सम्पत्तिवान मालिक की अपनी कोई संतान नहीं होती थी, उस मालिक के ही अधिक आश्रित–अनुयायी अधिक होते थे।

अतः हर मालिक के दरवाजे पर सबेरे–सबेरे जो भीड़ एकत्रित होती थी, उसमें गुलाम, आजाद किए हुए गुलाम एवं आश्रित–अनुयायी वर्ग के लोग ही रहते थे। सामान्य रूप से सुबह–सुबह आने वाले लोगों में आश्रित–अनुयायी वर्ग के 10 से 100 के बीच में और लगभग इतनी ही संख्या में गुलाम और आजाद किये हुए गुलाम शामिल रहते थे। आस–पास में रहने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण लोग भी सबेरे मालिकों के घरों पर होने वाले इस जमघट में शामिल रहा के साथ–साथ गाँवों में भी लगा करते थे। अर्थात् मालिक

के साथ–साथ गाँवां में भी हुआ करते थे। सामान्य रूप से सभी धन–सम्पत्ति वाले मालिकों के आस–पास इसी तरह के जमघट हुआ करते थे। सभी धन–सम्पत्तिवान मालिकों के आस–पास ऐसे जमघट होने ही चाहिए, ऐसी मान्यता समाज में थी। धीरे–धीरे यह मान्यता एक परम्परा में बदल गयी और इसने एक संस्थागत रूप ले लिया। सबसे अधिक महत्त्वहीन और नगण्य उन्हें माना जाता था, जो स्वयं दूसरां के पास जाते थे, लेकिन उनके पास कोई नहीं आता था। कोई व्यक्ति अगर किसी बड़े सम्भ्रान्त आदमी का आश्रित हो तो वह बड़े ही गर्व से अपने संरक्षक (मालिक) के बारे में अपने आस–पास के लोगों को बताता था, शेखी भी बघारता था, अपने मालिक (संरक्षक) के प्रभाव के बारे में डींगे भी हाँका करता था। समाज के लोग ऐसे व्यक्ति को उसके मालिक के नाम के साथ जोड़कर ही जानते थे, और उसे अपने मालिक के नाम के साथ जोड़कर ही समाज में पुकारा जाता था। कई आश्रित और आजाद गुलाम आपस में मिलकर अपने संरक्षक (मालिक) की मूर्ति को किसी सार्वजनिक स्थान पर लगाया करते थे। यदि सार्वजनिक स्थान पर संभव नहीं हुआ मूर्ति को लगाने का कार्य मालिक (संरक्षक) के जीवित रहने पर ही अक्सर किया जाता था। मूर्ति को लगाने का खर्चा आजाद गुलाम एवं आश्रितों द्वारा मिलकर उठाया जाता था। इस मूर्ति के नीचे के हिस्से में उस संरक्षक (मालिक) द्वारा किये गये कार्यों का विवरण रहता था और साथ में उस संरक्षक के अनुयायियों एवं आजाद

गुलामों का नाम लिखा जाता था। लेकिन जिनका नाम लिखा जाता था, वे वही लोग होते थे, जिन्हांने समाज में थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा पायी हो या दौलत कमायी हो। धीरे–धीरे समय बीतने पर इन मूर्तियों के निचले हिस्सों में लिखे जाने वाले अनुयायी लोगों के नाम मित्रां के नाम के रूप में लिखे जाने लगे। अर्थात Clients शब्द को Friends में बदल दिया गया। (Clients = आश्रित, अनुयायी। Friends = मित्र, दोस्त)

सुबह के समय मालिक (संरक्षक) के सामने होने वाली परेड एक धार्मिक कृत्य या कर्मकाण्ड जैसा बन गयी। यदि–कोई आश्रित (Clients) इस परेड में जाने से इंकार करे, तो उसका रिश्ता अपने संरक्षक के साथ समाप्त माना जाता था। जब किसी संरक्षक के सामने सुबह की परेड होती थी, तो उसमें आने वाले सभी अनुयायी (Clients) एक खास किस्म की पोशाकें पहनते थे। इन सभी अनुयायियों (Clients) को संरक्षक की ओर से कोई प्रतीकात्मक तोहफे भी दिये जाते थे। इन तोहफों में कई बार खाने–पीने की चीजें भी होती थीं। परेड में आने वाले गरीबों के लिये, वे खाने–पीने की चीजें एक तरह से पेट भरने का साधन होती थीं। लेकिन ये खाने–पीने की वस्तुयें उन्हीं गरीबां को बाँटी जाती थीं, जो गरीब संरक्षक (मालिक) के सामने सबेरे होने वाली परेड में शामिल होकर संरक्षक को झुककर प्रमाण करते थे, और मालिक के लिये गाये जाने वाले गीतों को सामूहिक रूप से गाया करते थे। मालिकों (संरक्षकों) द्वारा दिये गये रात्रि भोज में जो लोग शामिल होते थे, उन्हें उनकी हैसियत के अनुसार ही शराब तथा अन्य खाने की वस्तुयें दी जाती थीं। इसी तरह शामिल होने वाले अनुयायी और आजाद गुलामों को उनकी हैसियत के अनुसार ही बिठाया जाता था। यह नहीं हो सकता था कि कोई भी कहीं भी बैठ सके। संरक्षक एवं उसके परिवार के लोग एक साथ एक ही स्थान पर रह कर आने वालों से अभिवादन और शुभकामनायें स्वीकार करते थे। अनुयायियों, आजाद गुलामों और गुलामों के ऊपर मालिक का एक तरह का नैतिक प्रभुत्व रहता था। मालिक लगातार अपने अनुयायियों एवं आजाद गुलामों को व्यवहार करने के बारे में ज्ञान देता रहता था। अर्थात् आजाद गुलामों को एवं अनुयायियों को अपने संरक्षक (मालिक) से कैसा व्यवहार करना चाहिए तथा समाज के अन्य लोगों से भी कैसा व्यवहार करना चाहिए इसकी जानकारी या ज्ञान अपने संरक्षकों से ही मिलता था। ऐसा माना जाता था कि मालिक (संरक्षक) को ही अधिक ज्ञान होता था, उसके अनुयायियों, आजाद गुलामों एवं गुलामों को ज्ञान कम ही होता था। समाज में एक सम्पत्तिवान मालिक को एक अच्छे पिता के समान माना जाता था; जो अच्छा व्यवहार सिखाता था, ज्ञान देता था, समाज में आचरण करने की शिक्षा भी दिया करता था।

गाँवां में सभी खेती बटाईदारी पर होती थी। खेतों के मालिक अपने गुलामों से खेती कराते थे या फिर गाँव के दूसरे गरीबों से बटाईदारी पर खेती करवाते थे। जिन किसानों से बटाईदारी पर खेती करायी जाती थी, उन सभी के ऊपर खेतां के मालिकों का एक नैतिक प्रभुत्व और अधिकार माना जाता था। यूरोप में ईसाईकरण के विरोध में और ईसाई चर्च के विरोध में जब सामाजिक आन्दोलन हुए तो जो खेत मालिक ईसाई हो गये थे, उन्होंने धड़ाधड़ अपने आश्रितों, बटाईदार किसानों तथा आजाद गुलामों का भी धर्म त्याग (स्थानीय धर्म से त्याग) कराना शुरू कर दिया और इन बटाईदार किसानां एवं आश्रितों को ईसाई धर्म अपनाने के लिये प्रताड़ित करना शुरू किया। समाज के सामान्य लोग चर्च और ईसाईयत का विरोध करते थे ये लोग अपने–अपने देवी–देवताओं की पूजा करते थे, उसी के अनुसार उन लोगों के पंथ एवं

संप्रदाय बने हुए थे। ईसाईकरण की हवा चलने पर सामाजिक संघर्ष शुरू हुए। चर्च ने लोगों का विरोध करना शुरू किया, बदले में स्थानीय लोगों ने चर्च को भी प्रताड़ित करना शुरू किया। इसी प्रताड़ना के दौर में जो मालिक ईसाई हो गये थे, उन मालिकों ने अपने बटाईदार किसानों, आश्रितों, आजाद गुलामां को अपने नैतिक प्रभाव और आर्थिक दबाव का प्रयोग करते हुए ईसाई बनाना शुरू किया। बटाईदार किसानों या आश्रितों का जो भी धर्म था, उसे त्याग कराना शुरू किया। यूरोप के अनेकों स्थानों पर स्थानीय धर्मस्थलों को तोड़ा गया, उनके स्थान पर चर्चों का निर्माण कराया गया। कई स्थानां पर तो यह कार्य रातों–रात किया गया। कई स्थानों पर
बगावतें भी हुईं चर्च के खिलाफ एवं मालिकों के भी खिलाफ, जिन्होंने ईसाईयत का अभियान चलाया। इस अभियान के तहत मालिक (जो स्वयं ईसाई हो गया हो) अपने गुलामों से, आश्रितों से, मित्रां से एवं आजाद गुलामों से यह सुनना पसंद करता था कि–"हम सभी आपके रहमोकरम पर हैं। जो आपका धर्म वही हमारा धर्म। हमारे बच्चे आपके हैं, हमारी आत्मा और शरीर भी
आपका ही है।" मालिक का नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी तरह का दबाव, उसके (मालिक के) दरबारियों पर रहता था। जो भी मालिक अपना दरबार रखता था, वही सत्ता प्रतिष्ठान में जाने का अधिकारी माना जाता था अर्थात्; समाज पर शासन करने का अधिकारी होता था। धन–सम्पत्ति और दरबारी वर्ग का होना ही राजनैतिक नेतृत्व देने की योग्यता माना जाता था। अर्थात् राजनेता वही हो सकता था, जिसके पास अकूत धन–सम्पत्ति हो एवं दरबारी वर्ग हो। यूरोप में मान्यता यह रही कि लोगों के ऊपर शासन करना कोई विशेष तरह का कार्य नहीं था, बल्कि वह तो एक प्राकृतिक अधिकार ही था, मालिक वर्ग का। यह मान्यता इस विचार से पैदा हुयी कि हमेशा ही बड़े जानवरां को छोटे जानवरों पर शासन करने का अधिकार होता है। सामाजिक हैसियत और राजनैतिक सम्प्रभुता दोनों ही साथ–साथ चलती थीं। साधारण लोगों के ऊपर शासन करना, राज्य को चलाना, ये कोई विशेष कार्य नहीं माने जाते थे। मालिक वर्ग के लोगों को ही सीनेट (संसद जैसी संस्था) में नियुक्त किया जाता था। यह सीनेट ही
नियम–कानून बनाने का कार्य करती थी। उन्हीं नियम–कानूनों के अनुसार समाज के साधारण
को चलना पड़ता था। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सीनेट में बहुत कम ही सीटें रहती थीं। अर्थात् बहुत कम ही सदस्य सीनेट में हुआ करते थे। यह सीनेट शहरों के स्तर पर हुआ
करती थी। तथा कई शहरों को मिलाकर राज्य होता था, तो राज्यों के स्तर पर भी सीनेट होती
थी। को शहर की परिषद (सीनेट) में
स्थान मिल ही जाये। कभी–कभी कोई व्यक्ति बहुत बड़े नाम वाला हो तो वह भी अपनी भूमिका सम्मानजनक तरीके से नगर परिषद या राज्य सीनेट में निभा सकता था, लेकिन परिषद या सीनेट के सदस्य ही उस नामी व्यक्ति को चुनते थे। रोमन साम्राज्य में सरकार का स्वरूप अप्रत्यक्ष ही होता था। रोमन साम्राज्य छोटे–बड़े शहरों (जो कि स्वायत्त थे) को मिलाकर बना
था। अभिजात्य वर्ग (मालिक वर्ग) के किसी भी सदस्य को, चाहे वह सीनेटर हो या घुड़सवार हो, उसे अपने मालिक (संरक्षक) का नाम (टाइटिल) होना, जरूरी होता था। यह बहुत ही जरूरी माना जाता था। यह टाइटिल (नाम) एक तरह से पहचान और सम्मान का प्रतीक हुआ करता था। किसी मालिक (संरक्षक) द्वारा शहर के लिये किया गया कोई काम या सेवा, इसी नाम की इज्जत के लिये ही होती थी। संरक्षक अपने नाम की खातिर नगर परिषद के खजाने में धन दान किया करते थे, नगर परिषद का भवन बना दिया करते थे। जरूरत पड़ने पर नगर परिषद

के कानूनी झगड़ों या सीमा विवादों में भी मदद करते थे। अदालतां में चलने वाले मुकदमों का भी निपटारा करवाने में मदद करते थे। बदले में नगर परिषद द्वारा, संरक्षक को एक सम्मानयत्र प्रदान किया जाता था, जिसे संरक्षक अपनी बैठक के कमरे में दीवार पर टाँग कर रखा करते थे। संरक्षक (मालिक) के परिवार में हुई कोई मौत पूरे शहर के लिये एक घटना बन जाती थी। पूरा शहर मालिक (संरक्षक) के परिवार को सांत्वना देने के लिये उमड़ पड़ता था। संरक्षक (मालिक) जब शहर में घूमने के लिये निकलता था तो किसी राजा की तरह उसका स्वागत किया जाता था। जिनके कार्यक्रमों में साधारण लोग एक दूसरे से मिलने के लिये एकत्रित होते थे, ऐसे सभी संगठन, संस्थायें किसी न किसी मालिक (संरक्षक) की देख–रेख में ही चला करते थे। इस तरह की किसी भी संस्था का ऐसा कार्यक्रम हो, जिसमें रात्रिभोजन (डिनर) भी शामिल हो, तो रात्रिभोजन की व्यंजन–सूची तय करने का कार्य मालिक (संरक्षक) ही करता था।
रात्रिभोजन के लिये दान भी वह मालिक (संरक्षक) ही दिया करता था। समाज में कोई भी नामी–गिरामी व्यक्ति जब बाहर निकलता था, तो अपने प्रशंसकों के साथ ही निकलता था। कलाकारों, मशहूर डॉक्टरों, दान करने वालों आदि सभी के अपने–अपने प्रशंसक हुआ करते थे। जो संरक्षक हुआ करते थे यदि कभी उन्हं लगे तो पूरे शहर पर अत्याचार भी कर सकते थे।
इन अत्याचारों को अंजाम देने में संरक्षक के आश्रित, आजाद गुलाम तथा गुलाम भी शामिल होते थे।

समाज में सार्वजनिक पदों की बहुत प्रतिष्ठा मानी जाती थी। सामान्य रुप से अधिकांश सार्वजनिक पद एक वर्ष के लिये होते थे। अभिजात्य वर्ग के लोगों के लिये इन पदों का प्रतीकात्मक ही सही लेकिन महत्त्व होता था। अभिजात्य वर्ग के लोग अपने साम्राज्य के एकाधिकार एवं प्रताप को लगातार बनाये रखने में बहुत इच्छुक रहते थे। रोमन साम्राज्य की भव्यता अभिजात्य वर्ग की सामूहिक सम्पत्ति और सीनेटर वर्ग में ही मानी जाती थी। हजारों छोटे–बड़े नगरों को मिलाकर रोमन साम्राज्य बना था। लेकिन ये सभी छोटे–बड़े नगर अपने में पूर्ण स्वायत्त होते थे। इन नगरों का कारोबार या तो संरक्षक (मालिक) चलाते थे, या फिर नगरों की परिषदें चलाती थीं। इन परिषदों में स्थानीय अभिजात्य वर्ग के ही लोग हुआ करते थे। अभिजात्य वर्ग एक तरह से जमींदार वर्ग ही होता था। इन छोटे–बड़े नगरों में जमीदारी चला करती थी। जिन गाँवों या नगरों में परिषदों नहीं होती थीं, वहाँ जमींदारी ही चला करती थी। लेकिन जिन गाँवों या नगरों में परिषदं होती भी थीं, तो उन परिषदों को चलाने वाले जमींदार ही होते थे या अभिजात्य वर्ग के ही लोग होते थे। पूरी सत्ता इन्हीं अभिजात्य वर्ग के लोगों के हाथों में ही रहती थी। नगर परिषदों में किसे सदस्य (सीनेटर) बनाना है किसे नहीं, यह फैसला करने का अधिकार भी इन्हीं जमींदार वर्ग या अभिजात्य वर्ग के लोगों का हुआ करता था। नगर परिषद में सदस्य होने के लिये पहली प्राथमिकता धन–सम्पत्ति ही होती थी। अर्थात् यदि किसी के पास धन–सम्पत्ति नहीं है तो वह सदस्य (सीनेटर) होने की पात्रता नहीं रखता था। धन–सम्पत्ति की एक सीमा होती थी, अर्थात् उस सीमा से कम धन–सम्पत्ति होने पर कोई व्यक्ति नगर परिषद का सदस्य होने के काबिल नहीं रहता था। एक और महत्त्व की बात यह थी कि धन–सम्पत्ति होने के बावजूद यदि कोई व्यक्ति किसी अभिजात्य वर्ग के संरक्षक का आश्रित नहीं हो तो भी वह नगर परिषद का सदस्य नहीं हो सकता था। सीनेट (परिषद) एक क्लब जैसी होती थी। इस क्लब (सीनेट) के सदस्य ही तय करते थे किसी नये व्यक्ति को

क्लब का सदस्य बनाया जाय या नहीं? सीनेट (क्लब) के सदस्य किसी नये व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं चुनते थे। किसी नये सदस्य का चुनाव पहले उन आश्रितों या अनुयायियों द्वारा किया जाता था, जो क्लब के अभिजात्य वर्ग के सदस्यों के साथ जुड़े हुए होते थे। इन अनुयायियों की संख्या काफी अधिक होती थी। सार्वजनिक पदों (जैसे सीनेटर आदि होना) की प्रतिष्ठा बहुत ऊँची होती थी। लेकिन ये सभी पद उन्हीं को मिला करते थे, जिनके निजी सम्बन्ध अभिजात्य वर्ग के लोगों से होते थे। चूँकि सब कुछ निजी सम्बन्धों पर ही आधारित होता था इसलिये भ्रष्टाचार और भाई–भतीजावाद पूरे सार्वजनिक स्थानां पर फैला हुआ था। रिश्वतखोरी सभी सार्वजनिक पदों पर बैठे हुए लोग करते ही थे। रोमन साम्राज्य में तो भयंकर रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद छूत की बीमारी जैसा फैला हुआ था। समाज के साधारण लोग रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के किस्से अक्सर एक–दूसरे को सुनाया करते थे। जितने भी बड़े सरकारी (सार्वजनिक पदां पर बैठे हुए) अधिकारी थे, वे सभी अपने व्यक्तिगत हितां को अधिक महत्त्व दिया करते थे। अपनी जेबां को भरना वे अधिकार जैसा ही मानते थे। समाज में अपराध भी बहुत बड़े पैमाने पर हुआ करते थे। खासकर संगठित अपराध बहुत अधिक होते थे। ये माफिया समूह साधारण लोगों का खूब शोषण करते थे। कभी–कभी समाज के की भी लूटपाट माफिया वर्ग के द्वारा होती रहती थी। समाज के सत्तातंत्र की जिम्मेदारी होती थी कि माफिया वर्ग के शोषण से समाज के साधारण लोगों को बचाये, क्योंकि माफिया वर्ग के कारण सत्तातंत्र की बहुत बदनामी होती थी। जो समाज का रक्षण माफिया वर्ग से कर सकता था, वही समाज को नियंत्रित करने का अधिकारी भी होता था। माफिया वर्ग भी कई बार यह दिखाने की कोशिश करता था कि वह साधारण लोगों के भले के लिये प्रयत्नशील है। इस माफिया वर्ग को भी पालने वाले अभिजात्य वर्ग के ही लोग हुआ करते थे। माफिया वर्ग के लोग अपने आकाओं (अभिजात्य वर्ग) के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाकर रखते थे। लेकिन ये सभी सम्बन्ध गोपनीय ही रखे जाते थे। अभिजात्य वर्ग के लोग अक्सर ही माफिया वर्ग के गाडफादर माने जाते थे। सार्वजनिक सेवाओं की मदद से लगातार धनी होते जाना कोई हैरानी या आश्चर्य की बात नहीं मानी जाती थी। जो लोग सार्वजनिक पदों पर नियुक्त होते थे, वे नियुक्ति के बाद से ही पैसा बनाना शुरू कर देते थे। समाज के लोग भी इस बात को जानते थे और यह बात सामान्य मानी जाती थी। ईमानदार सरकारी अधिकारी होना बहुत ही मुश्किल होता था। सार्वजनिक पदों पर बैठे हुए अधिकारी सामान्य रूप से भ्रष्ट और बेईमान ही होते थे। ईमानदार अधिकारी मिलना बहुत ही मुश्किल होता था। हरेक उच्च अधिकारी अपने से नीचे के अधिकारी से रिश्वत लेता था। बख्शिश लेना–देना एक परम्परा जैसा ही था। इन सबके बाबजूद कई शताब्दियों तक रोमन साम्राज्य चलता रहा। रोमन साम्राज्य की सेना में भी भ्रष्टाचार और घूसखोरी अपने चरम पर रही। अक्सर सेना के सिपाही अपने से बड़े अधिकारी को घूस दिया करते थे। सेना में जितने भी अधिकारी स्तर के पद हुआ करते थे, वे सभी उच्च स्तर के अधिकारियों को घूस देकर खरीदे जाते थे। अधिकारी स्तर के पदां की रिश्वत एकदम निश्चित होती थी। अर्थात् सभी अधिकारी पदों पर नियुक्ति–पत्र पाने के लिये एक निश्चित रकम घूस के रूप में देनी पड़ती थी। कई बार सेना के उच्च अधिकारियों को इसलिये भी घूस दी जाती थी कि वे अपने मातहत सिपाहियों को अधिक काम नहीं सौंपें। सामान्य रूप से सेना के प्रत्येक रेजीमेंन्ट में एक चौथाई सैनिक अपने उच्च अधिकारियों को रिश्वत देकर छुट्टी मनाते रहते

थे। ये छुट्टी मनाने वाले सैनिक अपने–अपने नगरों या गाँवों में जाकर या फिर बैरक में ही रहकर मजा करते रहते थे। सैनिकां को रिश्वत देने के लिये पैसा, चोरी–डकैती से या गुलामों से मिलता था। चोरी–डकैती करना भी सैनिकों के कार्य में ही आता था। सामान्य रूप से यह चोरी–डकैती किसी पड़ोसी राज्य में की जाती थी। लेकिन कई बार की जरूरत पूरी करने के लिये उसी राज्य की प्रजा को लूट लिया जाता था, जिस राज्य की प्रजा की रक्षा करने के लिये सेना रखी जाती थी। यदि कोई सैनिक थोड़ा धनी हो जाये, तो फिर उस सैनिक का उच्च अधिकारी सैनिक की पिटाई करता था, और पिटाई

को हिस्सा नहीं दिया। ऐसे सैनिकों को भयंकर काम से लाद दिया जाता था। यह अधिक काम सैनिकों को तब तक करना पड़ता था, जब तक वह सैनिक अपनी कमाई गयी धन–सम्पत्ति का बँटवारा अपने उच्च अधिकारियों के साथ नहीं करता था। कोई भी सरकारी या सार्वजनिक कार्यक्रम अधिकारियां के लिये पैसा बनाने का एक जरिया ही बनता था। कार्यक्रम एक तरह से जनता के प्रति धोखाधड़ी ही होता था। कई बार जनता के पैसे लूटने के लिये ही इस तरह के कार्यक्रम बनाये जाते थे। सभी कार्यालयों में चपरासी, क्लर्क से लेकर और उच्च स्तर के अधिकारियों के सभी पद रकम लेकर बेचे जाते थे। इन पदों पर नियुक्त होने वाले लोग भी रिश्वत देकर इन पदां को इसलिये खरीद लेते थे कि पद मिलने के बाद उन्हें भी रिश्वत लेने का मौका मिलेगा। जितना धन देकर पद मिलता था, पद मिलने के बाद कई गुना अधिक धन कमाया जा सकता था। पद मिल जाने के बाद भी नये कर्मचारी या अधिकारी को अपने से उच्च अधिकारी को फिर से रकम (रिश्वत) देनी पड़ती थी। समय–समय पर इसी तरह से उच्च अधिकारियों को रकम देनी ही पड़ती थी। चाहे किसी भी उँचे से ऊँचे पद पर बैठने वाला अधिकारी हो, उस पद के बदले में रकम देनी ही पड़ती थी। यदि किसी अधिकारी से ऊपर कोई अधिकारी नहीं हो तो रिश्वत की रकम को खजाने में जमा कराना पड़ता था। सम्राट द्वारा या किसी राज्य के राजा द्वारा की गयी नियुक्ति पर भी रिश्वत की रकम खजाने में जमा करानी पड़ती थी। सम्राट द्वारा प्रदान की गयी कोई भी पदवी, चाहे वह कैप्टन (सेना में) हो या साधारण क्लर्क, को धारण करने वाले हर व्यक्ति की नैतिक जिम्मेदारी मानी जाती थी कि वह सम्राट को हर तरह से लाभ पहुँचाये। यदि कोई पदवीदार ऐसा करने में विफल रहता था, तो उसे बहुत ही प्रताड़ना दी जाती थी और उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। उच्च पदों पर नियुक्ति संरक्षकों की सिफारिश पर की जाती थी। अतः उच्च पद पर जाने वाले व्यक्ति को तिहरी रिश्वत देनी होती थी। पहली रिश्वत अपने संरक्षक को (सिफारिश करने के लिये), दूसरी रिश्वत पदवी मिलने के बाद अपने से उच्च अधिकारी को, और अन्त में सम्राट को। यदि कोई संरक्षक, रिश्वत लेने के बाद भी सिफारिश करने में असमर्थ हो, या उसकी की गयी सिफारिश को माना नहीं जाय, तो पद का आंकाक्षी व्यक्ति दरबार में शिकायत कर सकता था। यह दरबार संरक्षक का होता था। संरक्षक के दरबार में रकम लेकर पद या पदवी दिलाने वाले विशेष अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। इन्हीं अधिकारियों के सामने पद नहीं मिलने से निराश आदमी शिकायत कर सकता था। जो अधिकारी पैसे लेकर भी पद दिलाने में असमर्थ रहते थे, उनकी काफी बदनामी होती थी। ऐसे अधिकारियों को सम्मान की नजरां से नहीं देखा जाता था। कई बार ऐसा होता था कि सरकारी अधिकारी एक दूसरे को रिश्वत दिया करते थे। जो सेनाएं,

गाँव, नगरों आदि की रक्षा के लिये रखी जाती थीं, उन सेनाओं को भी उपहारस्वरूप रिश्वत देनी पड़ती थी। ये सेना की टुकड़ियाँ प्रशासन चलाने का भी काम करती थीं। सेना या सामान्य प्रशासन का कोई भी अधिकारी छोटे से छोटा काम भी बिना रिश्वत के नहीं करते थे। हर सरकारी कार्यालय में रिश्वत लेने का एक नियम बना हुआ था। सरकारी कार्यालय में जाने वाला हर व्यक्ति अपने साथ कुछ न कुछ रिश्वत या तोहफा अधिकारियां के लिये लेकर जाता था। यह रिश्वत या तोहफा जिस अधिकारी को दिया जाता था, उस अधिकारी की श्रेष्ठता का प्रतीक होता था। हर शासन करने वाला अधिकारी शासित होने वाली प्रजा से या लोगों से श्रेष्ठ माना जाता था। अधिकारियों को मिलने वाले उपहार उन अधिकारियों की वास्तविक श्रेष्ठता और उच्चता को प्रमाणित करते थे। सरकारी कार्यालयों के उच्च अधिकारी रिश्वत तो लेते ही थे, लेकिन लूट–खसोट भी करते थे। जब रोमन साम्राज्य ने ब्रिटेन को गुलाम बना लिया तो यह रिश्वतखोरी का सारा का सारा तंत्र ब्रिटेन में स्थापित किया गया। गाँव–गाँव स्थानीय जनजीवन से जुड़े किसानों आदि को नियमपूर्वक अपने उच्च अधिकारीयों को टैक्स के रुप में अनाज देना पड़ता था। इन किसानों को अपना अनाज सरकारी गोदामों में रखने के लिये शुल्क के अतिरिक्त रिश्वत भी देनी पड़ती थी। जब किसान गोदामों से अपना अनाज वापस निकालते थे, तो भी घूस देकर ही अनाज निकालना पड़ता था। हमेशा गवर्नरां की ओर से गैरवाजिब टैक्स की माँग रहा करती थी, जिसको साधारण जनता दिया करती थी। फिर यह गैरवाजिब टैक्स अधिकारियां की जेबों में चला जाता था। केन्द्रीय सरकारों को इस गैरकानूनी टैक्स वसूलने की पूरी जानकारी रहती थी। गैरकानूनी तरीके से एकत्रित किये गये टैक्स में से केन्द्रीय सरकार के खजाने में भी हिस्सा भेजा जाता था। राज्य की जनता को गवर्नर बनकर लूटना एक संसदीय और कानूनी रूप से ठीक रास्ता माना जाता था।

किसी राज्य की सरकार एक प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी की तरह ही चलाई जाती थी। सरकारी अधिकारी जनता के खून–पसीने की गाढ़ी कमाई के टैक्स के पैसे पर ऐश करते थे और अमीर होते जाते थे। कई बार गवर्नर स्तर के अधिकारी अपने द्वारा खर्च किये गये धन का कोई हिसाब किताब भी नहीं दिया करते थे। गवर्नरां द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर खर्च किया गया धन भी बजट में डाल दिया जाता था। गवर्नर स्तर के अधिकारी लूट–खसोट में तो शामिल रहते ही थे, लेकिन वे किसी और व्यक्तिगत व्यवसाय में भी शामिल हो सकते थे। पहली शताब्दी में इटली के व्यापारियों ने गवर्नरां की मदद से पूरे देश की व्यवस्था पर कब्जा कर लिया था। काफी लम्बे समय तक ये व्यापारी सत्ता चलाते रहे। गवर्नर स्तर के अधिकारी इस तरह सत्ता कब्जा कराने में मदद इसलिये करते थे, क्योंकि इसमें (सत्ता कब्जा कराने में) व्यापारियों से अच्छी खासी रकम मिलती थी। 19 वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप में इसी तरह की लूट–खसोटी और भ्रष्टाचारी तंत्र चलता रहा। फ्रांस में 19 वीं शताब्दी का एक गर्वनर (जो कि स्टैंडहाल राज्य का था), मात्र एक वर्ष में 5 लाख फ्रैंक की सम्पत्ति बना लेता था। इस गवर्नर का नाम काउ मोस्का था। सामान्य रूप से एक–एक गवर्नर एक साल के अन्दर लाखों डालर कमा लेता था, फिर भी ये गवर्नर अपने आपको बहुत ईमानदार मानते थे और अपनी ईमानदारी की डींगें बधारते रहते थे। लाखों डालर की रकम कमा लेना भी गवर्नरां के लिये कम ही मानी जाती थी। शताब्दियों तक इसी तरह का तन्त्र यूरोप में चलता रहा। और लोगों से टैक्स वसूलने के का प्रयोग भी यूरोप में होता रहा।

किसी भी अधिकारी के लिये मूलभूत गुण ईमानदारी और न्यायप्रियता नहीं होते थे। बल्कि को डरा–धमकाकर धन चूस लेना अथवा जरूरत पड़ने पर सभी तरह के गुण्डों, माफिया का प्रयोग करके अपनी व्यवस्था को चलाये रखना ही मूलभूत गुण माने जाते थे। व्यापारी की पूर्ति के लिये ही व्यापार करते थे, लेकिन घोषित यह करते थे कि वे समाज के लोगों के हित के लिये ही व्यापार करते हैं। इसी तरह से सत्ता–तंत्र के सभी उच्च अधिकारी, गवर्नर आदि यह घोषित करते थे कि वे जनसाधारण के भले के लिये ही सत्ता में आये हैं। लेकिन वास्तव में वे सब सत्ता–तंत्र के अधिकारी अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये और अपने स्वयं के भले के लिये ही सत्ता प्रतिष्ठान में शामिल होते थे। हालाँकि समाज के साधारण लोगों को भी अधिकारियों का स्वार्थ समझ में आता था। अधिकारी वर्ग के लोग हमेशा साधारण लोगों को आज्ञाकारी होने के लिये कहा करते थे। आज्ञाकारी होने का अर्थ था –अधिकारियों की प्रताड़ना चुपचाप सहन करना, समय से टैक्स जमा करते रहना, गैरकानूनी टैक्स भी चुपचाप देते रहना, अधिकारियां को रिश्वत देते रहना आदि–आदि। ऐसा कहा जाता था –"आज्ञाकारी बनें, तो गवर्नर आपको प्यार करेगा"। एक अच्छा गवर्नर उसे माना जाता था, जो अपनी तिजोरी को अच्छे से भरना जानता हो। अधिकारी, शासन चलाने के क्रम में अमीर होते जाते थे, इसका अर्थ यह नहीं था कि सरकार को इसमें कोई रुचि नहीं थी या सरकार पूरी तटस्थता से रहती थी। सरकार भी अमीर होती जाती थी, क्योंकि अधिकारी लूट और रिश्वतखोरी की कुछ रकम सरकारी खजाने में भी जमा करते थे। ऐसे गवर्नर को दुर्भाग्यशाली माना जाता था, जिसे किसी मुकदमे का सामना करना पड़े और उसे सजा भी हो जाये। सजा फाँसी की भी होती थी। जिस गवर्नर को मुकदमे में फाँसी की सजा हो जाय, उसे तो अत्यन्त ही दुर्भाग्यशाली माना जाता था। यदि फाँसी नहीं भी हो, लेकिन मुकदमेबाजी के कारण किसी गवर्नर पर कलंक लग जाय तो उसे भी दुर्भाग्यशाली माना जाता था। कई अधिकारी नियुक्ति पाने के लिये रकम का इंतजाम करने के लिये कर्जा लेते थे। इस कर्जे को बाद में चुकाते रहते थे। जो गवर्नर टैक्स वसूलने में सफल नहीं होते थे, उन्हें सम्राट की नाराजगी झेलनी पड़ती थी। सम्राट ऐसे गवर्नरां की खुलेआम आलोचना कर सकता था, जो टैक्स वसूलने में नाकाम रहते थे। कभी–कभी साधारण किसान या साधारण लोग सम्राट के सामने जाकर अधिकारियों की शिकायत भी कर सकते थे। कभी–कभी जब सम्राट के सामने अधिकारियां के लूट–खसोट और भ्रष्टाचार की बहुत अधिक शिकायतें आती थीं, तो सम्राट अपनी ओर से भ्रष्टाचार खत्म करने की अपील भी जारी कर सकता था। लेकिन वास्तव में भ्रष्टाचार और लूटखोरी ने एक कानूनी स्वरूप ग्रहण कर रखा था। गवर्नर, सरकारी अधिकारी और सेना के अधिकारी यह नहीं सोचते थे कि वे एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसकी प्रतिष्ठा हमेशा बनी रहनी चाहिए। बल्कि ये सब लोग अपने आप को सबसे ऊँचा और सबसे अलग मानते थे। जीवन के हर क्षेत्र में यह अभिजात्य वर्ग (शासन चलाने वाला वर्ग) अपने आपको दूसरों से अत्यन्त ही श्रेष्ठ मानता था। इस अभिजात्य वर्ग के अधिकारियां का क्रम कौन बड़ा, कौन छोटा, यह कार्यालय के स्तर पर ही तय होता था। यह बड़े–छोटे का क्रम व्यक्तिगत स्तर पर नहीं होता था। राज्यस्तरीय कोई कार्यालय हो या नगरपालिका स्तर का सभी जगह अधिकारियों के ऊंचे–नीचे होने का क्रम, सरकारी कार्यालय के स्तर पर ही तय होता था। यदि किसी अधिकारी को मात्र एक वर्ष के लिये ही नौकरी करने को मिल जाये तो वह अपने को धन्य समझता था

और उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जाती थी। यदि किसी को सम्राट की सेवा करने का मौका मिल जाये तो उसकी भी सामाजिक हैसियत बढ़ जाती थी। सम्राट की सेवा करने वाले या किसी सरकारी कार्यालय में नौकरी करने वाले दोनां के परिवारां की भी प्रतिष्ठा बढ़ती थी। सम्राट की सेवा में लगने वाले लोगों के चित्र आर्ट गैलरी में लगाये जाते थे। ये आर्टगैलरियाँ सम्राट के
पुरखों के चित्रों से सजायी जाती थीं। 'गरिमा' एक बहुत ऊँचा एवं महान शब्द माना जाता था। यह गरिमा या प्रतिष्ठा कोई गुण नहीं माना जाता था, बल्कि यह तो अभिजात्य वर्ग के गौरव से जुड़ा हुआ एक आदर्श माना जाता था। समाज में इस प्रतिष्ठा या गरिमा को बहुत ही महत्त्व का विषय माना जाता था। प्रतिष्ठा को प्राप्त किया जा सकता था एवं बढ़ाया जा सकता था। प्रतिष्ठा को खोया भी जा सकता था। यदि किसी को दण्डस्वरूप निर्वासित कर दिया जाय या देश निकाला दे दिया जाय तो उसकी सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती थी, चाहे वह गवर्नर ही क्यों न हो। लोगों के बीच मिलने वाली प्रतिष्ठा किसी के लिये भी निजी सम्पत्ति के समान होती थी, जिसकी हर कीमत पर रक्षा की जाती थी, जैसे कि कोई राजा अपने राजमुकुट की रक्षा करता था। सार्वजनिक पद पर बैठना भी एक तरह की सामाजिक प्रतिष्ठा ही मानी जाती थी। इस सार्वजनिक पद की रक्षा हर पदाधिकारी ऐसे ही करता था, जैसे कोई राजा अपने खजाने की रक्षा करता था। यदि कोई अधिकारी अपने पद की रक्षा करने में सफल हो जाये तो उसे अपराधी नहीं माना जाता था अन्यथा वह अपराधी होता था, यदि पद की रक्षा करने में असमर्थ हो। प्रसिद्ध रोमन सम्राट सीजर ने अपने पद और प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये अपनी ही जन्मभूमि के विरुद्ध सिविल वार (गृहयुद्ध) कराया था। सीजर कहता था कि उसकी प्रतिष्ठा
उसके जीवन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। कोई व्यक्ति अभिजात्य वर्ग से जुड़ा हुआ है या नहीं, इसके कुछ बाहरी दिखने वाले लक्षण होते थे। भाषा, पहनावा, बोलचाल का ढंग, चलने–बैठने का तरीका आदि से व्यक्ति के अभिजात्य वर्ग की पहचान हो जाती थी। अभिजात्य वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति अच्छी शिक्षा लिये हुए होता था। अच्छा शिक्षित होने के लिये साहित्य संस्कृति एवं मिथकशास्त्र का अध्ययन जरूरी माना जाता था। किसी व्यक्ति को नगर परिषद या राज्य परिषद (सीनेट) का सदस्य चुनने के लिये या फिर किसी सार्वजनिक पद का अधिकारी चुनने के लिये यह देखा जाता था कि उसे अपनी संस्कृति का ज्ञान है कि नहीं। संस्कृति, साहित्य का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को ही प्राथमिकता दी जाती थी। कई बार नियुक्त होने वाले व्यक्ति में यह देखा जाता था कि वह सरकारी आदेशों को अच्छे गद्य स्वरूप में लिख सकता है कि नहीं? साहित्यशास्त्र के जो भी स्कूल होते थे वे सभी भावी प्रशासनिक अधिकारियों के लिये प्रशिक्षण केन्द्र जैसे होते थे। ऐसा माना जाता था कि साहित्य एवं संस्कृति दोनों से ही
प्रशासनिक वर्ग एवं सत्ता–तन्त्र की छवि अच्छी बनती जाती थी। इसलिये सत्ता–तन्त्र के प्रशासनिक अधिकारियां को साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन कराया जाता था। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन किये हुए अधिकारियां से प्रशासनिक व्यवस्था की छवि अपनी ही नजरां में बढ़ती थी, न कि साधारण लोगों की नजरां में। अर्थात् साधारण लोगों की नजरों में इस बात का कोई महत्त्व नहीं होता था कि सरकारी अधिकारी साहित्य या संस्कृति पढ़े हुए हैं। यूरोप में सभी सरकारी आदेश ऐसी जटिल और साहित्यिक भाषा में होते थे कि
उन्हं समझना भी बहुत मुश्किल होता था। इन सरकारी आदेशों में शब्दाडम्बर बहुत अधिक ही होता था। सरकारी आदेशों में इस तरह के वाक्य होते थे, जो एक बार में पढ़कर समझ में नहीं

आयें। इतनी अधिक घुमावदार भाषा और जटिल एवं पुराने शब्दों का प्रयोग सरकारी आदेशों में होता था कि साधारण लोगों को तो उस सरकारी आदेश का सिर पैर भी समझ में नहीं आ सकता था। इन सरकारी आदेशों की जटिलता के कारण कई बार इन आदेशों को लागू करना भी मुश्किल होता था, क्योंकि आदेशों को लागू करवाने वाले अधिकारियों को भी आदेशों की भाषा समझ में नहीं आती थी। सत्ता–तन्त्र में ऐसे लोगों के लिये ही स्थान होता था, जो धन–सम्पत्ति का सम्मान कर सकें, अच्छे शिक्षित हों और साधारण लोगों पर शासन कर सकें। धन–सम्पत्ति की सम्मान करने का अर्थ स्वयं धन सम्पत्ति से सम्पन्न होना तथा और अधिक धन–सम्पत्ति बनाने की कोशिश करना माना जाता था। किसी भी व्यक्ति में ये विशेषतायें आँखों से देखकर और सरंक्षक वर्ग द्वारा दी गयी रिपोर्ट के आधार पर ही जानी जाती थीं। किसी व्यक्ति को सत्ता–तंत्र में लाने की प्रक्रिया Co- optation (सहयोजित करना) की होती थी। इसी प्रक्रिया के तहत तरक्की आदि भी होती थी। किसी व्यक्ति का चुनाव पूरी परिषद मिलकर नहीं करती थी, बल्कि परिषद का कोई सदस्य अपने दूसरे सहयोगी सदस्यों को सिफारिश करता था और इसी सिफारिश के आधार पर वह व्यक्ति चुन लिया जाता था। इसी को सहयोजन Co-optation की प्रक्रिया कहा जाता था। परिषद में शामिल हर व्यक्ति अपने किसी आश्रित की ही सिफारिश करता था। इस सिफारिश के समय ही यह बताया जाता था कि वह व्यक्ति (जिसका सिफारिश की जाती थी) कितना पढ़ा–लिखा है, कितना धन–सम्पत्तिवान है, राज्य को या शासन व्यवस्था को रिश्वत और टैक्स के रूप में कितना लाभ करा सकता है, आदि–आदि जैसी बातें सिफारिश के समय कही जाती थीं। इन्हीं सिफारिशों के आधार पर ऊँची से ऊँची सरकारी नौकरी या सत्ता प्रतिष्ठान में जगह मिलती थी। सम्राट भी किसी नियुक्ति के लिये (चाहे वह नियुक्ति कितने ही अधिक ऊँचे पद के लिये हुई हो) सिफारिशों को ही आधार बनाता था। इस व्यवस्था में हर अभिजात्यवर्गीय व्यक्ति को अपने आश्रितों के ऊपर शासन करने या दबदबा बनाये रखने का सुख मिलता रहता था। आश्रित भी दो तरह के होते थे – एक तो वे जिन्हें किसी संरक्षक की जरूरत होती थी, दूसरे वे जिन्हें संरक्षकों के द्वारा अपने दरबार की शोभा बढ़ाने के लिये रखा जाता था। पहले किस्म के जो आश्रित होते थे, उन पर संरक्षक अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करता था। दूसरे किस्म के आश्रितां के लिये संरक्षकों के बीच आपसी प्रतियोगिता जैसी रहती थी, क्योंकि ऐसे आश्रित जो किसी संरक्षक के दरबार की शोभा बढ़ा सकें कम ही मिला करते थे। अधिकांश मामलों में संरक्षक अपने दूसरे किस्म के आश्रितों को ही आगे बढ़ाया करता था। दरबार की शोभा बढ़ाने वाले आश्रितों में से ही सत्ता प्रतिष्ठान के लिये सिफारिशें की जाती थीं।

ग्रामीण क्षेत्रों में जो अधिक जमीन के मालिक जमींदार होते थे, वे ही साधारण किसानां के संरक्षक माने जाते थे। ये जमींदार किसानों पर अत्याचार भी करते थे और उन किसानों के संरक्षक भी माने जाते थे। गाँवां के साधारण किसान भी बाहरी लूटेरों या शत्रुओं से अपनी रक्षा के लिये इन जमींदार संरक्षकों की शरण में ही जाते थे, भले ही ये संरक्षक भी उन साधारण किसानों को प्रताड़ित करें या लूटें। लेकिन कई बार ऐसा भी होता था कि किसी गाँव या नगर पर बाहरी आक्रमण हो जाय और आक्रमणकारी गाँवनगर के संरक्षक से अधिक ताकतवर हो, तो गाँव के सभी आश्रित बाहरी आक्रमणकारी का साथ देते थे। बाहरी आक्रमणकारी जीत जाय तो फिर वही गाँव कर मालिक या संरक्षक बन जाता था। फिर गाँव के आश्रित उस नये मालिक

या संरक्षक के अधीन हो जाते थे। कभी–कभी गाँव का ही कोई व्यक्ति संरक्षक की हैसियत में आने के लिये गाँव में गृहयुद्ध कराता था और वर्तमान संरक्षक के खिलाफ बगावत कर देता था, और यदि वह वर्तमान संरक्षक को हरा दे तो फिर वही व्यक्ति गाँव का नया संरक्षक होता था। ''संरक्षक'' और ''आश्रित'' शब्दों का यूरोपीय समाज में बहुत अधिक प्रयोग होता था। इन दोनों शब्दों का प्रयोग यूरोप में बहुत सारे सम्बन्धों को परिभाषित करने में किया जाता था। एक को आश्रित के आपसी सम्बन्ध भी संरक्षक (मालिक) और आश्रित शब्दों की मदद से परिभाषित हुआ करते थे। अक्सर किसी व्यक्ति के लिए अदालत में बचाव करने में उसका संरक्षक ही सामने आता था। या फिर अदालत में किसी वादी या प्रतिवादी का बचाव जो भी करता था, वह उसका (वादी प्रतिवादी) संरक्षक ही माना जाता था। समाज में जिनके पास शक्ति और सम्पन्नता होती थी, वे सभी संरक्षक बनने के लिये उतावले रहते थे। कोई युवा अधिकारी जो तरक्की की उम्मीद लगाये बैठा हो, उसकी स्थिति ऐसी होती थी। जैसे कि कोई गरीब अपने किसी संरक्षक पड़ोसी की सेवा करके कुछ अपने हक में अच्छा कराने की कोशिश करता था। युवा अधिकारी को तरक्की पाने के लिये अपनी सिफारिश किसी संरक्षक से करानी होती थी। कई बार तरक्की पाने के लिये संरक्षकों को भी बदलना पड़ सकता था। जिस संरक्षक ने नौकरी दिलायी यह जरूरी नहीं होता था कि वही संरक्षक तरक्की भी दिलवा सके इसलिये कई बार संरक्षक को बदलना भी पड़ता था। कई बार ऐसा भी होता था कि संरक्षक ऐसे किसी के लिये सिफारिश कर सकता था, जिसे वह पहले से जानता भी नहीं हो। लेकिन ऐसी स्थिति में संरक्षक सिर्फ यह सोचकर सिफारिश करता था कि एक दिन वह व्यक्ति जिसकी सिफारिश की गयी, संरक्षक के प्रति वफादार हो जायेगा। इसी वफादारी की उम्मीद में संरक्षक सिफारिश कर सकता था। जिन्हें अपनी सिफारिश किसी संरक्षक से करानी होती थी, वे रोज सबेरे संरक्षक के घर जाकर उन्हं अभिवादन किया करते थे। किसी भी संरक्षक को यह जानकर खुशी होती थी कि उसके आश्रितों की संख्या गुलामों की संख्या से अधिक नहीं हो रही है। राजनैतिक अभिजात्य वर्ग में सब कुछ व्यक्तिगत जान पहचान और सम्बन्धों पर ही आधारित होता था। राजनैतिक वर्ग में एक दूसरे से वायदा खिलाफी करना बहुत ही खराब माना जाता था। जो राजनेता अपने किये गये वायदे को पूरा नहीं करे उसे कृतघ्न माना जाता था। यदि कोई संरक्षक यह सोचकर किसी की सिफारिश इस आधार पर करे कि वह व्यक्ति (जिसके लिये सिफारिश की जा रही है) संरक्षक का मित्र है, और उसका कैरियर आगे बढ़ाना है, तो ऐसा माना जाता था कि संरक्षक स्वयं को ही धोखा दे रहा है। संरक्षक अक्सर अपने आश्रितों को कैरियर के बारे में सलाह भी दिया करते थे। संरक्षकों द्वारा लिखे गये सिफारिशी पत्र भी एक विशिष्ट साहित्यिक शैली में लिखे जाते थे। कई बार इस तरह के सिफारिशी पत्रों में मूल बात या मूल विषय कम ही होता था, लेकिन साहित्यिक शब्दों का अधिक भण्डार होता था। इस तरह के सिफारिशी पत्रों में दो–तीन ही मूल बातें होती थी। एक तो उस आश्रित का परिचय जिसके लिये सिफारिशी पत्र लिखा जा रहा है, दूसरी वह बात जिसके लिये सिफारिश की जा रही है। सामान्य रूप से सभी संरक्षक अपने आश्रितों पर विश्वास करते थे और अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके आश्रितों के काम कराया करते थे। सिफारिश हो जाने के बाद कुछ ऐसे भी आश्रित होते थे, जो अपने संरक्षक को छोड़ दें। ऐसी स्थिति में संरक्षक की बदनामी होती थी।

संरक्षक सिफारिश करने के पूर्व यह नाप–तौल लेता था कि उसकी सिफारिश सत्ता प्रतिष्ठान या राजा द्वारा मंजूर हो जायेगी; अन्यथा, सिफारिश मंजूर नहीं होने की स्थिति में संरक्षक की प्रतिषठा में बहुत कमी आती थी। और प्रतिष्ठा ही सब कुछ मानी जाती थी। यदि–कोई संरक्षक अपने सार्वजनिक जीवन को और राजनैतिक जीवन को छोड़ दे, तो उसकी सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती थी। राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन को छोड़ देने वाले संरक्षक के सभी आश्रित उसे छोड़ देते थे। कोई भी समाज का व्यक्ति उस संरक्षक को अभिवादन करने नहीं जाता था। उस संरक्षक का दरबार लगना बंद हो जाता था। यूरोप में निजी जीवन और सार्वजनिक जीवन के बीच में कोई विभाजन रेखा नहीं होती थी, और न ही ऐसा कोई कानून या परम्परा थी जो दोनां जीवनों के बीच विभाजन दिखा सके।

यदि किसी व्यक्ति के निजी जीवन और सार्वजनिक जीवन में कोई भेद करना हो या कोई अन्तर देखना हो, तो उस व्यक्ति की एक नागरिक की जिन्दगी कैसी है, उसका पद क्या है, उसकी प्रतिष्ठा कितनी है आदि–आदि की मदद से ही ये संभव होता था। यही सब बातें किसी व्यक्ति की अस्मिता होती थीं। खासकर सारी बातें अधिकारी वर्ग के लोगों के लिये या राजनेता वर्ग के लोगों के लिये अस्मिता का अंग होती थीं। यदि कोई लेखक या इतिहासकार अपने किसी चरित्र के बारे में लिखता था, तो वह सबसे पहले उस चरित्र का परिचय कराता था कि वह चरित्र कोई निम्नवर्गीय व्यक्ति है या फिर अभिजात्यवर्गीय? या फिर कोई गुलाम है, या फिर कोई सीनेटर है अथवा कोई आजाद गुलाम है?। एक बार चरित्र का परिचय हो जाने के बाद ही आगे कुछ और लिखा जाता था। यदि कोई चरित्र सीनेटर हुआ तो फिर आगे उसका और भी अधिक परिचय दिया जाता कि वह राजभवन से जुड़ा हुआ है अथवा किसी अन्य वाणिज्य, वित्त आदि विभाग से? यदि किसी सैनिक के चरित्र का परिचय देना हो, जिसने राज्य सीमा की रक्षा करने के लिये किसी युद्ध में भाग लिया हो, तो ऐसे सैनिक को हमेशा ही जवान लिखा जाता था, चाहे वह सैनिक उम्र में 40 वर्ष से ऊपर या 50 वर्ष के आस–पास ही क्यों न हो। इसी तरह सीनेटर स्तर के किसी चरित्र को लिखना हो तो उसके परिचय के बारे में काफी प्रशंसात्मक तरीके से लिखा जाता था। नगरपालिका स्तर के अधिकारियां के बीच में एक क्रम हुआ करता था। जो व्यक्ति निम्नवर्ग में से नहीं हो और स्थानीय नगर परिषद में हो, उसे काफी तेजस्वी माना जाता था। ऐसे व्यक्ति को स्थानीय स्तर पर ऊँचे से ऊँचे पद मिल सकते थे। ऊँचे–ऊँचे पदों पर बैठने के बाद ऐसा व्यक्ति शहर का सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बन जाता था। राजनैतिक जीवन में किसी महत्त्वपूर्ण पद पर रहते हुए जीवन बिताना कोई विशेष कार्य नहीं माना जाता था। यह माना जाता था कि ऊँची प्रतिष्ठा और नाम वाले व्यक्ति को, जो अभिजात्य वर्ग से भी जुड़ा हुआ हो, राजनैतिक पदों को स्वीकार करना ही चाहिए। राजनैतिक पदों पर अभिजात्य वर्ग के लोगों का आना अभिजात्य वर्ग के लोगों के लिये सामान्य व्यवहार की ही बात मानी जाती थी। ऐसा माना जाता था कि अभिजात्य वर्ग के लोगों का राजनीतिक पदों पर बैठना उनका जन्मसिद्ध अधिकार ही है। अभिजात्य वर्ग का जो भी व्यक्ति राजनैतिक पदों से वंचित रह जाता था, उसे बहुत ही तुच्छ और हीन माना जाता था। समाज में जो दर्शनशास्त्री होते थे, उन्हं साहित्यिक वर्ग के लोग ऊँचा मानते थे। ऐसा माना जाता था कि जो दर्शनशास्त्री हैं वे ज्ञोनवान हैं, विवेकवान हैं। जो दर्शनशास्त्री या तत्ववेत्ता होते, उनकी मान्यता यह थी कि तत्ववेत्ता (दर्शनशास्त्रज्ञ) होने के लिये राजनैतिक कैरियर को छोड़ा जा सकता है। वास्तव में

राजनैतिक पदों पर वे ही लोग आते थे, जो बहुत अधिक सम्पन्न परिवारां से जुड़े हुए होते थे। लेकिन यह सौभागय (राजनैतिक पद पर जाना) अभिजात्य वर्ग के लिये एक कर्तव्य जैसा माना जाता था। राजनैतिक जीवन को एक उद्देश्यपूर्ण जीवन माना जाता था। यदि कोई व्यक्ति
बहुत अमीर हो, लेकिन किसी राजनैतिक पद पर नहीं हो, तो उसे शहर का सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति या शहर का प्रथम नागरिक नहीं माना जाता था। यदि कोई सम्पन्न व्यक्ति राजनैतिक क्षेत्र में नहीं जाना चाहे, तो उसके आस–पास के सहयोगी एवं आश्रित उस सम्पन्न व्यक्ति को राजनैतिक क्षेत्र में जाने के लिये मजबूर करते थे और दबाब डालते थे। अधिकांश राजनैतिक पदों की समयावधि एक वर्ष की होती थी। राजनैतिक पदों पर बैठे हुए लोग बहुत अधिक फिजूलखर्ची किया करते थे। कई बार यह फिजूलखर्ची लोगों को मौज–मजा देने के नाम पर की जाती थी। कोई व्यक्ति जब राजनैतिक पद पर जाता था, तो उस पद को बरकरार रखने में उसे भी काफी कुछ खर्च करना पड़ता था। यह राजनैतिक पद उस व्यक्ति को बहुत महँगा पड़ता था। सार्वजनिक धन और निजी सम्पत्ति के बीच भेद करना बहुत ही मुश्किल होता था। कब खर्च हुआ धन सार्वजनिक और कब निजी होता था, यह कहना बहुत ही मुश्किल होता था। जो भी व्यक्ति किसी बड़े राजनैतिक पद पर पहुँचता था, तो उससे अपेक्षा की जाती थी कि वह लाखों करोड़ों का खर्च साधारण लोगों के मनोरंजन पर करे। जरूरत पड़ने पर यह
के मनोरंजन के लिये
सर्कस, नाटक, घुड़दौड़, तलवारबाजी के मुकाबले आदि का आयोजन अक्सर ही किया जाता था। इन्हीं आयोजनों पर खर्चा होता था, जिनके बारे में ऊपर कहा गया है। लोगों के मनोरंजन पर लाखों–करोड़ों का खर्च करने वाला कोई भी अधिकारी या राजनैतिक पद पर बैठा हुआ व्यक्ति एक बार खर्च करने के बाद फिर अपनी तिजोरियां को भरने में लग जाता था। ये
पर लगाये गये गैरकानूनी टैक्सों से ही भरी जाती थीं। लोगों का
शोषण करके कई तरह से तिजोरियाँ भरी जाती थीं। हर दस से बीस हजार साधारण लोगों के परिवारां के बीच से एक परिवार होता था, जो राजनैतिक हैसियत रखने वाला होता था। बड़े–बड़े नगरां में आलीशान इमारतें इन राजनैतिक पदों पर बैठे हुए लोगों द्वारा ही बनवायी जाती थीं। नगरपालिका स्तर पर नियुक्त हुए अधिकारियां से भी अपेक्षा की जाती थी कि वे नगरपालिका के खजाने में लोगों की मौज मस्ती पर खर्च होने वाले पैसे को जमा कराते रहं। ये अधिकारी खजाने में जमा कराने वाले पैसों को साधारण लोगों की जेबों से ही निकाला करते थे। साधारण लोगों की जेबां से पैसे निकलवाने के कई तरीके काम में लाये जाते थे। यदि
कोई अधिकारी अपनी पूरी समयावधि में किसी कारण से सरकारी तिजोरी में पैसा नहीं भर पाये, तो उस अधिकारी से एक लिखित वायदा कराया जाता था कि उसका वारिस एक न एक दिन वह रकम सरकारी खजाने में जमा करा देगा। सरकारी खजाने में भरी जाने वाली रकम की एक निश्चित सीमा तय की जाती थी। समय–समय पर राजनैतिक पद प्रतिष्ठा वाले लोग अपने समाज के साधारण लोगों के लिये दावतों का भी आयोजन किया करते थे। इन दावतों के पूर्व कुछ मनोरंजन के कार्यक्रम भी आयोजित हुआ करते थे, जैसे तलवारबाजी की प्रतियोगिता, नाटक आदि। नाटक आदि करने के लिये थियेटर (रंगशाला) का निर्माण भी राजनैतिक पदोंपर बैठे हुए लोगों द्वारा कराया जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य कई उपहार भी शहर नगर को राजनैतिक लोगों द्वारा दिये जाते थे। ये सभी उपहार भवनों के रूप में, सड़कों के रूप में,

सड़कों पर लगने वाली मूर्तियों के रूप में, आदि–आदि किसी भी रूप में हो सकते थे। ये उपहार व्यक्तिगत उदारता और सार्वजनिक कर्त्तव्य दोनां के तहत ही दिये जाते थे। कोई सार्वजनिक कार्य या उपहार निजी उदारता से किया गया या दिया गया है अथवा कर्त्तव्य भाव से, यह पता लगाना मुश्किल ही होता था। जब किसी व्यक्ति को राजनैतिक पद दिया जाता था तो उसे अपनी हैसियत बनाने के लिये उपहार आदि शहर को देने ही पड़ते थे। जो लोग नये–नये अमीर बनते थे और अपने शहर या नगर के साधारण लोगों के मंनोरंजन पर खर्च नहीं करते थे, ऐसे अमीरां के ऊपर लेखकों द्वारा व्यंग्य लिखे जाते थे। शहरों में रहने वाले को इस बात की आदत पड़ गयी थी कि जो भी उनके नगर का नगरपति बनेगा वह मौज–मजा और मनोरंजन पर खूब खर्चा करेगा। साधारण लोगों को यह मनोरंजन पर होने वाला खर्चा अपना अधिकार जैसा लगता था। साल में कम से कम एक बार तो यह सार्वजनिक मनोरंजन होता ही था। साल में यह दिन तब आता था, जिस दिन किसी उच्च अधिकारी की या नगरपति जैसे अधिकारी की नियुक्ति होती थी। हर नियुक्त होने वाला नया नगरपति या कोई उच्च अधिकारी टैक्स वसूलने के नये–नये तरीके लेकर आता था और भ्रष्टाचार के नये–नये तरीके खोजे जाते थे, क्योंकि हर नगरपति खजाना भरने के लिये नये नये स्त्रोतों की तलाश करता रहता था। नगरपति एक हाथ से जनता के मनोरंजन पर खर्चा करता था, तो दूसरे हाथ से जनता से धन वसूलता भी था। हर नये आने वाले अधिकारी को यही लगता था कि उसके पूर्व का अधिकारी काफी अमीर था और काफी पैसा बनाकर ले गया। हर नया अधिकारी पैसा बनाने में अपने पूर्व अधिकारी से ही प्रतिस्पर्धा करता था। कई बार ऐसा भी होता था कि किसी अधिकारी या नगरपति की समयावधि पूरी होने के बाद फिर से उसी पद पर नियुक्ति हो जाती थी। अर्थात् एक व्यक्ति कई बार किसी उच्च पद पर नियुक्त हो सकता था, लेकिन जब भी नियुक्ति होती थी, तो वह मात्र एक साल के ही लिये होती थी। अक्सर जिद्दी और खजाने को भरने में सक्षम व्यक्तियों को ही एक से अधिक बार किसी उच्च पद पर नियुक्ति मिला करती थी। यदि दो समान स्तर के उच्च अधिकारियों में झगड़ा हो जाये तो फिर गवर्नर दोनों के बीच फैसला कराता था या अन्तिम निर्णय देता था। साधारण लोगों को गरम पानी ही सबसे अधिक पसंद था, क्योंकि गरम पानी की उन्हं सबसे अधिक जरूरत होती थी। इसलिये हर नगरपति का यह कर्त्तव्य माना जाता था कि वह अपने नगर के जनसाधारण को गरम पानी की सुविधा उपलब्ध कराये। जो नगरपति गरम पानी उपलब्ध कराये उसे बहुत ही उदार माना जाता था। साधारण लोगों द्वारा ऐसे नगरपति का, जो गरम पानी उपलब्ध कराये, बहुत गुणगान किया जाता था। गरम पानी उपलब्ध कराने वाले नगरपति को दूसरी और तीसरी बार भी नियुक्ति मिल सकती थी। इसी के साथ अधिकारियों को भी गरम पानी उपलब्ध कराने में सफल रहने पर दूसरी और तीसरी बार नियुक्ति मिल सकती थी। कभी ऐसा भी होता था कि कोई अनपेक्षित सरंक्षक (जिससे कोई अपेक्षा नहीं हो) सामने से आकर साधारण लोगों की जरूरतों को पूरा कराता था। ऐसी स्थिति में परिषद उस संरक्षक को किसी उच्च पद पर नियुक्त करने की सिफारिश करती थी। यदि वह संरक्षक कोई पद लेने से मना कर दे तो फिर उस संरक्षक को कोई उपाधि दी जाती थी, जैसे कि 'फादर आफ द सिटी' या शहर का संरक्षक आदि–आदि। यह जो संरक्षक को मिलती थी, वह उपाधि, संरक्षक की मौत होने पर उसकी कब्र के ऊपर खुदवायी जाती थी या लिखवायी जाती थी। कई बार संरक्षक की मौत होने पर उसकी मूर्ति भी

नगर में किसी प्रमुख स्थान पर लगवायी जाती थी। मूर्ति लगाने का खर्चा संरक्षक परिवार द्वारा या कभी–कभी सरकारी अधिकारियों के द्वारा उठाया जाता था। यदि संरक्षक साधारण लोगों में बहुत लोकप्रिय हो तो उसकी मूर्ति लगाने के लिये पैसे जनसाधारण के द्वारा चन्दे के रूप में एकत्रित किये जाते थे। नगरपति होने की योग्यता रखने वाले उम्मीदवार बहुत ही कम होते थे। नगरपति होने का अर्थ लोगों पर शासन करना नहीं, बल्कि कोष में जमा रकम को बाँटना अधिक माना जाता था। सबसे अच्छा नगरपति उसे माना जाता था, जो खजाने की रकम को लोगों के मौज–मजे पर खर्च कर सके। यदि कोई ऐसा नगरपति हो जाये जो लोगों के मौज–मजा पर खर्चा नहीं कर सके तो जनता के बीच में उस नगरपति को हटाने की चर्चा हुआ करती थी। लोगों की इच्छा होती थी ऐसे नगरपति को हटाया जाय। नगरपति को हटाने का अधिकार नगर परिषद को ही होता था। राज्य सत्ता को चलाने वालों को इस बात का एक संदिग्ध या अनिश्चित संतोष होता था कि जिस पद के लिये उन्होंने रिश्वत दी, वह पद उन्हें मिल गया। यदि कोई नगरपति हो जाता था, तो उसे यह संतोष हुआ करता था कि अब नगर उसका हो गया। नगरपति और नगर परिषद के सदस्य मिलकर ही टैक्स तय किया करते थे।
पर टैक्स
का भार अधिक पड़े। राज्य सत्ता वर्ग अपने स्वार्थों का ध्यान टैक्स को तय करने में बराबर रखता था। हर शहर दो भागों में बँटा होता था–एक ओर राज्य सत्ता एवं अभिजात्य वर्ग के लोग तो दूसरी ओर साधारण एवं निम्न वर्ग के लोग। माना यह जाता था कि अभिजात्य एवं सत्ता वर्ग देने वाला और साधारण वर्ग लेने वाला होता है। लेकिन वास्तव में होता उल्टा ही था, क्योंकि अधिक से अधिक टैक्स साधारण वर्ग के लोगों पर ही लगाया जाता था और कम से कम टैक्स अभिजात्य वर्ग के लोगों पर होता था। इसलिये वास्तव में देने वाला वर्ग तो निम्न वर्ग या साधारण वर्ग ही था। किसी व्यक्ति की स्थानीय स्तर पर प्रतिष्ठा इस बात से मानी जाती थी कि उसने सार्वजनिक भवनों को बनाने में कितना खर्च किया। यदि कोई व्यक्ति अपने पूरे जीवनकाल में सार्वजनिक भवनों के निर्माण पर कुछ भी खर्च नहीं करे और भोज समारोहों का भी आयोजन नहीं करे तो ऐसे व्यक्ति की कोई भी प्रतिष्ठा समाज में नहीं होती थी। यदि किसी बेटे का पिता राज्य सत्ता में रहा हो, तो यह सामान्य माना जाता था कि उस बेटे में पिता के गुण होंगे। पिता के मरने के बाद अक्सर उसके बेटे पर नैतिक जवाबदारी आती थी खर्चा करने की। सामान्य रूप से बेटे को पिता का पद मिल जाया करता था। यदि किसी नगरपति के मरने के बाद उसका बेटा पद सँभालने के लिये उपलब्ध नहीं हो, तो फिर नगरपरिषद के सदस्यों द्वारा नया उम्मीदवार तलाशा जाता था। कई बार उम्मीदवार व्यापारी वर्ग में से भी तलाश किया जाता था। नगरपति का पद बहुत कीमती माना जाता था। अभिजात्य वर्ग के लोग इसी तन्त्र को चलाते थे, क्योंकि परम्परा ऐसी ही थी। इस तन्त्र का विरोध भी होता था और दबे स्वरों में आलोचना भी होती थी। लेकिन चुपचाप इस तन्त्र को स्वीकार करने वाले भी होते थे। केन्द्रीय सरकार, जो पूरे तन्त्र में सर्वोच्च मानी जाती थी, को भी समय–समय पर संदेह होते थे इस बात के कि नीचे का तन्त्र ठीक से चल रहा है या नहीं? केन्द्रीय सरकार यह पता करने के लिये कि नीचे का तन्त्र बराबर चल रहा है या नहीं, अभिजात्य वर्ग के लोगों की ही मदद लेती थी। केन्द्र सरकार अपनी लोकप्रियता को भी जाँचने के लिये समय–समय पर कुलीन वर्ग की मदद लेती थी। अक्सर केन्द्र सरकार अपने अधिकारियां और

साथ ही साथ कुलीन वर्ग (अभिजात्य वर्ग) के लोगों से पूछती रहती थी कि–"लोगों के दु:खों का निवारण हो रहा है या नहीं?" कई बार लोगों के आंदोलनों को कुचलने के लिये और लोगों की माँगों को दबाने के लिये भी केन्द्र सरकार कुलीन तन्त्र की मदद लेती थी। कई बार लोगों के गुस्से को शांत करने के लिये केन्द्र सरकार अपने सहयोगी कुलीन तन्त्र को बेकार का आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन करने से रोकती थी। सरकार की प्रवृत्तियाँ व उद्देश्य लोगों को मनोरंजन प्रदान करने का रहता था या फिर सार्वजनिक भवनों के निर्माण का होता था। इन सार्वजनिक भवनों को बनाने के पीछे एक उद्देश्य, भवन बनवाने वालों का अभिमान या अहंकार पूर्ति करने का भी होता था। जब अकाल पड़ते तो साधारण लोग अपने नेताओं एवं अधिकारियां से सस्ते अनाज की माँग करते थे। सस्ते अनाज की माँग के लिये आंदोलन भी हुआ करते थे। अभिजात्य के मनोरंजन पर पैसा खर्च करते थे और अपने अहंकार की पूर्ति के लिये सार्वजनिक भवना

आडम्बरपूर्ण दिखावा स्वेच्छा से किया जाता था, लेकिन नागरिक होने की भावना से किया गया कार्य कर्त्तव्य माना जाता था। हालाँकि कर्त्तव्यभाव से किया गया कार्य काफी विरोधाभासी ही होता था। राज्य में रहने वाले हर साधारण व्यक्ति के लिये शत प्रतिशत टैक्स देना जरूरी होता था। साधारण लोगों का यही एक कर्त्तव्य माना जाता था कि वे समय से पूरा टैक्स देते रहं। साधारण लोगों को बाकी कुछ भी राज्य या समाज के लिये करना नहीं होता था। ऐसा माना जाता था कि राज्य या समाज को चलाने में महत्त्वपूर्ण भागीदारी अभिजात्य वर्ग या राजनैतिक, अधिकारिक वर्ग की ही होती थी और साधारण लोगों की भूमिका सिर्फ टैक्स भरने तक ही सीमित हुआ करती थी। साधारण लोगों की राज्य या समाज को चलाने में कोई भी भूमिका नहीं होती थी। यूरोप के पुराने शहरों में जो लोग राज्य सत्ता चलाने में लगे होते थे, उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे पूरे समर्पण से अपनी जिम्मेदारी निभायें और अपने कर्त्तव्यों को पूरा करें। जो अधिकारी लोगों के मनोरंजन पर भरपूर खर्चा कर सकें, उन्हं कर्त्तव्यपरायण एवं समर्पित माना जाता था। लोगों के मनोरंजन पर भरपूर पैसा खर्च करना एक तरह से धार्मिक कार्य ही माना जाता था। शहर के स्थानीय देवी–देवताओं का सम्मान करने या उन्हें प्रसन्न करने के लिये भी सार्वजनिक उत्सव आयोजित किये जाते थे और उन उत्सवों की मदद से आम लोगों का मनोरंजन हो, यह मुख्य उद्देश्य रहता था।

शहर के नागरिक वर्ग (अभिजात्य वर्ग के लोगों को ही नागरिक माना जाता था) के लोगों का आडम्बरपूर्ण दिखावा करना एक सामान्य बात थी। अर्थात् सभी नागरिक वर्ग के लोग आडम्बरपूर्ण दिखावा करते थे। जो भी धन–सम्पत्ति रखने वाले व्यक्ति होते थे वे अपने आपको बहुत ही महत्त्वपूर्ण जननेता या सार्वजनिक व्यक्ति मानते थे। धन–सम्पत्ति से सम्पन्न अभिजात्य वर्ग के लोग अपने परिवारों की बेटियों की शादी में नगर के लोगों को बुलाया करते थे। यदि कोई अमीर अभिजात्य वर्ग का व्यक्ति मर जाता था, तो उसकी अंतिम यात्रा में पूरा शहर शामिल होता था। कई बार मरने वाले व्यक्ति के सम्मान में तलवार बाजी की प्रतियोगिता या सामूहिक भोज(दावत) का कार्यक्रम आयोजित किया जाता था। किसी अमीर अभिजात्यवर्ग के व्यक्ति के मर जाने पर जो कार्यक्रम आयोजित होते थे, उसके लिये उस अभिजात्यवर्ग परिवार को (जिसके प्रमुख की मृत्यु हुई हो) बहुत उदार माना जाता था। यदि किसी नागरिक (अभिजात्य वर्ग का व्यक्ति ही नागरिक होता था) के बेटे की शादी हो या उस बेटे के जवान होने पर कोई आयोजन

किया गया हो, तो ऐसे आयोजन के समय उस अभिजात्यीय परिवार से अपेक्षा की जाती थी कि वह परिवार कोई सार्वजनिक कार्यक्रम का आयोजन करे। कई बार ऐसे मौके पर इस अभिजात्यवर्गीय परिवार के द्वारा सार्वजनिक कार्य के लिये धन आदि दिया जाता था। यदि कोई अभिजात्यवर्गीय परिवार सार्वजनिक उत्सव करने से या किसी सार्वजनिक कार्य के लिये धन देने से बचना चाहता हो, तो उसे अपने परिवार के आयोजन जैसे विवाह आदि, शहर से दूर किसी निजी स्थान (फार्म हाउस) पर ही करना पड़ता था। लेकिन ऐसा करने पर उस अभिजात्य वर्ग परिवार को सार्वजनिक जीवन से अलविदा कहना पड़ता था और उस परिवार का मुखिया गुमनामी के अंधेरे में खो जाता था। कई ऐसे भी घमण्डी अभिजात्य वर्ग के प्रमुख लोग होते थे, जो सार्वजनिक मनोरंजन के कार्यक्रमां को करने के बजाय ऐसी सार्वजनिक इमारतें बनवाते थे, जिन पर उनका नाम प्रमुखता से लिखा जाय। कई बार अभिजात्य वर्ग के प्रमुख लोगों द्वारा अपने–अपने जन्मदिन बहुत ही भव्य पैमाने पर मनाये जाते थे। इन समारोहों को कोई नाम भी दे दिया जाता था। इन आयोजनों पर होने वाला खर्चा उस अभिजात्यवर्गीय व्यक्ति के खजाने से ही होता था। इन्हीं सब रास्तों से किसी अभिजात्यवर्गीय व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती थी और उस व्यक्ति को शहर में महत्त्वपूर्ण माना जाता था। समाज के जो भी महत्त्वपूर्ण प्रमुख का शहर से रिश्ता प्राकृतिक एवं आमने–सामने का माना जाता था। राजनैतिक नेताओं और साधारण लोगों के बीच का सम्बन्ध कैसा होता था? – राजनैतिक नेता मंच पर चढ़कर, साधारण लोगों की भीड़ के बीच में अपने फैसले सुनाया करते थे, जैसे कि किसी सेना का जनरल अपने सैनिकों को युद्ध के मैदान में अपने फैसले सुनाया करता था। सम्राट भी कभी–कभी जनता के बीच में जाया करते थे और अपने निर्णय जनता को सुनाया करते थे। कभी–कभी सम्राट लोगों के लिये आयोजित होने वाले मनोरंजन के कार्यक्रमों; जैसे–सर्कस, नाटक आदि में पहुँच जाया करते थे। सम्राटां का इस तरह साधारण लोगों के बीच में जाना परम्परा मानी जाती थी। जो कुछ सम्राट करता था उसी तरह का व्यवहार गवर्नर अपने राज्य की जनता और कर्मचारियों के साथ एवं नगरपति अपने नगर की साधारण जनता और कर्मचारियों के साथ करता था। कई बार सम्राटां, गवर्नरां और नगरपतियों द्वारा लिये गये फैसलों को उनकी मृत्यु के बाद उनकी कब्रगाह पर लगे हुए पत्थरां में लिखा जाता था। इसी तरह से सम्राटां, गवर्नरां और नगरपतियों द्वारा कराये गये आयोजनों का वर्णन भी उनकी मृत्यु के बाद कब्रगाहों पर लगाये गये पत्थरों में किया जाता था। रोमन साम्राज्य का एक सम्राट हुआ था। मेजेरियस उसकी मृत्यु के बाद उसकी कब्रगाह के पत्थर पर लिखा गया–''ओ मेजेरियस, तुम्हारे जाने के बाद आने वाले सम्राट के लिये तुम एक आदर्श हो'' 'आने वाला सम्राट तुमसे सीख लेगा' "जो तुमने किया, ऐसा किसी ने किया नहीं'', "तुमने रोम के लिये जो कुछ किया, वह अपने खजाने से ही किया", "आज का दिन तुम्हारे लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है", "मेजेरियस बहुत ही उदार और दानी था", "मेजेरियस की उदारता और दानशीलता ही उसकी सच्ची शक्ति थी", "मेजेरियस सच्चा धनी था"। "मेजेरियस तलवारबाजी के मुकाबले के लिये आने वाले व्यक्ति को अधिक मेहनताना देकर वापस भेजता था। मुकाबले के लिये आने वालों को वापसी का किराया भी देकर भेजता था"। इसी तरह की बातें लिखी जाती थीं। कई बार सम्राटां द्वारा दिये गये दान की रकम को भी समाधि पत्थर पर लिखवाया जाता था।

नगरपतियों को भी जनता में लोकप्रिय हो जाने पर कुछ उपाधियों से सम्मानित किया जाता था ये उपाधियाँ नगर परिषदां द्वारा दी जाती थीं। लेकिन ये उपाधियाँ उन्हीं को दी जाती थीं, जो इनके पात्र होते थे। इन उपाधियों को उतना ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था, जितना कि महत्त्वपूर्ण पदों को माना जाता था। नगर का कोई महत्त्वपूर्ण नागरिक अपने समकक्ष दूसरे नागरिकां से अलग दिखना चाहता था, तो इसके लिये शहर के लिये कुछ कार्य करता था, या सार्वजनिक भवनों का निर्माण करता था, या शहर के खजाने में रकम दान करता था, या नगरवासियां के लिये मनोरंजन के कार्यक्रम कराता था। नागरिक भावना रखने वाले अभिजात्यवर्गीय लोगों के जीवन में बहुत से विरोधाभास रहते थे। प्रत्येक नागरिक वर्ग (अभिजात्य वर्ग) के व्यक्ति को नागरिकता की भावना का बढ़–चढ़कर प्रदर्शन करना होता था और अपनी प्रतिष्ठा को नगरीय परिवेश में बनाये रखने के लिये उदारतापूर्वक कई कार्य करने पड़ते थे। साधारण लोगों से ऊँचा था दिखाने के लिये प्रत्येक नागरिक को महत्त्वपूर्ण साबित होना होता था, यह भी दिखाना पड़ता था कि प्रत्येक नागरिक साधारण लोगों की नजर में अति महत्त्वपूर्ण है। साधारण लोगों को कुछ न कुछ आर्थिक फायदा नागरिक वर्ग से होता रहता था, इसलिये साधारण लोग इस नागरिक वर्ग को अति महत्त्वपूर्ण कहते थे। कोई शहर अपने नागरिक वर्ग से लाभान्वित भी होता था, और साथ ही साथ अपने नागरिक वर्ग के समर्पण का पारखी भी होता था। साधारण वर्ग के लोग अपने नागरिक वर्ग के विरोधाभासों को बहुत अच्छे से जानने–समझते थे। कई बार नागरिक वर्ग द्वारा साधारण वर्ग की बेइज्जती भी की जाती थी, लेकिन साधारण वर्ग के लोगों को उस बेइज्जती को भूलना ही पड़ता था। नागरिक वर्ग में, जो समर्पण होता था, अपने शहर या लोगों के बीच व्यक्तिगत प्रतिष्ठा या महिमामंडन के लिये ही होता था। रोमन साम्राज्य में जो भी सीनेटर हुए वे सभी अपना महिमामंडन कराने के लिये या साधारण लोगों के बीच अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये ही सार्वजनिक मनोरंजन के कार्यक्रम आयोजित कराते थे और दावतों का भी आयोजन करते थे। इन आयोजनों का एक और उद्देश्य उन सत्ता वर्ग के लोगों को प्रभावित करना भी होता था, जो सीनेटर का चुनाव करते थे। कोई नागरिक वर्ग का व्यक्ति जब तक किसी उच्च पद के लिये चुन नहीं लिया जाय तब तक सत्ता प्रतिष्ठान के लोगों को प्रभावित करने के लिये कुछ न कुछ करता रहता था। यदि वह नागरिक वर्ग का व्यक्ति किसी उच्च पद के लिये चुन लिया गया, तो बाद में भी आयोजन करता था, अपनी प्रतिष्ठा को बरकरार रखने के लिये।

अभिजात्य वर्ग का मानसिक झुकाव बेकार की इमारतें बनवाने का या अपनी मूर्तियाँ शहर में लगवाने का भी होता था। इमारतें बनाना या मूर्तियाँ बनाना ये दोनों की कलायें मानी जाती थीं, जिसमें कल्पनाशीलता का बहुत महत्त्व होता था। मैकियावली के शब्दों में – इमारतें बनवाना, मूर्तियाँ लगवाना या लोगों के मनोरंजन के लिये विभिन्न कार्यक्रम आयोजित कराना आदि सभी कार्य धन एवं सम्पत्ति के पुनर्वितरण के लिये महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। मैकेयावली के अनुसार ये कार्य अभिजात्य वर्ग और साधारण वर्ग के बीच में भेद करने के लिये जरूरी होते थे। अभिजात्य वर्ग या नागरिक वर्ग का अस्तित्व यूरोपीय इतिहास में बहुत ही बेजोड़ माना जाता है। इस अभिजात्य वर्ग को अपने रक्त की शुद्धता का बहुत गर्व रहा और यह वर्ग स्वयं का गुणगान करने वाला वर्ग रहा।

यूरोप में सामान्य रूप से नगरपालिकाओं में 100 के आस–पास सीटें हुआ करती थीं। नगरपालिका एक तरह से अभिजात्यवर्गीय लोगों का क्लब हुआ करती थी। इस नगरपरिषद में सभी अमीरों को शामिल नहीं किया जाता था। साम्राज्यी व्यवस्था के कानूनों के अनुसार यदि नगरपरिषद आर्थिक संकट में हो, तो किसी अमीर व्यापारी से अच्छी खासी रकम लेकर उस व्यापारी को नगरपरिषद में सदस्य बना लिया जाता था, चाहे वह व्यापारी कितना ही अभद्र क्यों न हो? व्यापारी का धन ही उसके नगरपरिषद सदस्य बनने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता था। यदि परिषद का कोई सदस्य नगर के हितां के विरुद्ध कार्य करे, तो उस सदस्य को परिषद से बाहर भी निकाला जाता था। शहर के हितां को अधिक प्रमुखता दी जाती थी। किसी परिषद के सदस्य को बाहर निकालने के लिये उसी परिषद के दूसरे सदस्यों का सबसे अधिक दबाव रहता था। कई बार परिषद से सदस्य को निकालने में हिंसा भी हो जाया करती थी। लेकिन कई सदस्य हिंसा से बचने के लिये परिषद से निकल भागना अच्छा समझते थे। जिन सदस्यों को निकाला जाता था, वे नगर से दूर अपने फार्म हाउस में चले जाते थे, क्योंकि उन्हें नगर भी छोड़ना पड़ता था। परिषद से निकाला गया सदस्य वहाँ तक जाता था, जहाँ से परिषद का अधिकार क्षेत्र समाप्त हो जाता था। अर्थात वह निकाला गया परिषद का सदस्य नगरपरिषद अधिकार क्षेत्र में नहीं रह सकता था। अधिकारी वर्ग एक और अर्थ में अभिजातीय वर्ग जैसा ही होता था। किसी अधिकारी को अच्छा पद मिलने के बाद वह उसे जल्दी छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता था और लम्बे समय तक उस पद को पकड़कर रखना चाहता था। यूरोप में कुछ

तक लोगों पर शासन किया। इन परिवारों ने अपनी प्रभुसत्ता को बनाये रखने के लिये आपस में (परिवारों में) शादियाँ कीं और वारिस पैदा किये, जिन वारिसों ने परिवार के पदों को सैकड़ों वर्षों तक बचा कर रखा। अभिजात्य वर्ग के लोगों में अपने परिवार और जाति के ऊँचे होने का घमण्ड भी होता था। अभिजात्य वर्ग में धन, सम्पत्ति, विरासत, जाति आदि सभी का बहुत अधिक घमण्ड होता था। प्रत्येक अभिजातीय वर्ग का व्यक्ति अपने प्रतिद्वन्दी से बढ़–चढ़कर उदारता दिखाने की कोशिश करता था। अभिजातीय वर्ग का कोई व्यक्ति जो किसी उच्च पद पर विराजमान हो जाये, तो वह कोशिश करता था कि उसके पूर्व जितने अधिकारी उस पद पर आये, उन सभी से अच्छा और आगे आने वाले अधिकारियों से भी अच्छा उसे माना जाय। दो अभिजातीय वर्ग के उच्च पदस्थ अधिकारियों या नगरपतियों में आपस में किस तरह की प्रतियोगिता चला करती थी, इसका एक उदाहरण है कि यदि किसी एक नगरपति या उच्च अधिकारी ने साधारण लोगों को नहाने के लिये गरम पानी उपलब्ध कराया, तो दूसरे ने गरम पानी के साथ शरीर पर लगाने वाला तेल उपलब्ध करा दिया, और तीसरे किसी नगरपति या अधिकारी ने गरम पानी के साथ खुशबूदार मालिश तेल उपलब्ध करा दिया। कई बार अभिजातीय लोग और उच्च अधिकारी एवं नगरपति यह कहकर खूब रिश्वत लेते थे कि उन्हें अपनी मृत्यु का समारोह बहुत बड़े आलीशान तरीके से करना है। ऐसे लोग अपने वारिसों को मरने के पूर्व इस तरह के आदेश देकर जाते थे कि मृत्यु के बाद उनकी याद में बहुत भव्य भोज समारोह या सार्वजनिक मनोरंजन का कार्यक्रम आयोजित किया जाय, ताकि मरने के बाद भी प्रतिष्ठा और बढ़े। अभिजात्य वर्ग और सत्ता वर्ग जो कुछ भी करता था, वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने, अपने परिवार के नाम को आगे लाने, साधारण लोगों की नजर में अपनी हैसियत ऊँची कराने आदि के ही उद्देश्य से करता था। यदि इस किये हुए से

किसी का भला हो जाय तो वह गौण बात होती थी। यदि इस किये हुए से किसी को फायदा हो जाये तो यह महत्त्वपूर्ण बात नहीं मानी जाती थी। अभिजातीय या सत्ता वर्ग को अपने हाथ में शक्ति की चाहना होती थी, तो वह भी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिये ही थी। नागरिक वर्ग के

के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में बहुत ही अधिक चला करती थी। हालांकि यह प्रतिस्पर्धा, समाज के साधारण लोगों के कुछ भी काम की नहीं होती थी, जिस तरह से नागरिक वर्ग के द्वारा किया जाने वाला आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन भी आम आदमी के कुछ भी काम का नहीं होता था। लेकिन फिर भी नागरिक वर्ग कें लिये प्रतिस्पर्धा (आपस में) एवं आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता था। बल्कि यह फालतू का प्रदर्शन और प्रतिस्पर्धा नागरिक वर्ग का साधारण वर्ग से अलगाव बनाये रखने के लिये और नागरिक वर्ग की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये महत्त्वपूर्ण माना जाता था। राजनैतिक सत्ता एवं आर्थिक सम्पन्नता को हासिल करने के लिये ही प्रतिस्पर्धा और आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन का प्रयोग किया जाता था।

दासप्रथा यूरोपीय अर्थव्यवस्था का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग रही है। कोई व्यक्ति कर्ज वापस नहीं करने की स्थिति में जेल भेजा जाता था या फिर कर्जदार की सम्पत्ति को पत्नी एवं बच्चों सहित जब्त किया जाता था, और उसे फिर कर्जदाता की गुलामी करनी पड़ती और बेगार भी करनी पड़ती थी। दूसरे जो स्वतन्त्र साधारण लोग होते थे, उन्हें टैक्स देने के लिये कुछ न कुछ कार्य करना पड़ता था। जैसे किसानों को टैक्स देने के लिये खेती में उत्पादन करना पड़ता था। टैक्स देने के बाद जो बचता था, वह स्वतन्त्र किसान का जीवन चलाने के लिये होता था। रोमन साम्राज्य ने सभी स्थानीय अभिजात वर्गों को टैक्स वसूलने और शासन करने के अधिकार दे रखे थे। केन्द्रीय साम्राज्य को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि स्थानीय सत्ता वर्ग के अधिकारी साधारण लोगों से किस तरह टैक्स वसूलते थे? यदि लोगों से टैक्स वसूलने में अत्याचार किया जाता था या लोगों को हैरान–परेशान किया जाता था, तो भी केन्द्रीय सत्ता या साम्राज्य को इससे कोई मतलब नहीं रहता था। इसी तरह से सरकारें चलायी जाती थीं। यूरोप के विभिन्न देशों ने दुनिया के अन्य दूसरे देशों को जब गुलाम बनाया, तो उन गुलाम देशों में भी सरकारें इसी उपर्युक्त तरीके से ही चलायी जाती थीं। कई किसान बड़े जमींदारों के खेतों में काम करते थे, जो बटाईदारी के सिद्धान्तों पर चलता था। खेत में काम करने के लिये अन्य मजदूर या कारीगर जरूरत पड़ने पर भाड़े पर लाये जाते थे। इस तरह के मजदूरों या कारीगरों से मौखिक समझौते ही किये जाते थे। कभी भी लिखित समझौते नहीं किये जाते थे। लेकिन किसी कारीगर या मजदूर को के रूप में जब रखा जाता था तब लिखित समझौता भी हो सकता था। मेहनताने के प्रश्न पर कोई झगड़ा होने की स्थिति में मालिक या जमींदार के शब्दों को ही अन्तिम माना जाता था। चूँकि मजदूर या कारीगर की हैसियत गुलाम जैसी ही हुआ करती थी, तो मालिक के हर फैसले को स्वीकार करना ही होता था। गाँवों में खेती से

में खर्च किया जाता था। गाँवां में रहने वाले मालिक किलेनुमा घरों में ही रहते थे। शहरों में रहने वाले मालिकों या जमींदारां के आस–पास की बस्ती में कारीगर लोग भी रहते थे, जो मालिकों की दैनिक जरूरतां की पूर्ति किया करते थे। इन बस्तियों में व्यापारी भी रहा करते थे। हर शहर में एक निकम्मा वर्ग हुआ करता था, जो कुछ भी अपने हाथों से कार्य नहीं करता था। यह जो निकम्मा वर्ग होता था, यह नागरिक वर्ग (मालिक–जमींदार) ही होता था। इस नागरिक वर्ग को, जो पूरी तरह से निष्क्रिय होता था, ही

प्रतिष्ठित वर्ग माना जाता था। निकम्मेपन को प्रतिष्ठित जमींदार वर्ग की आधारशिला माना जाता था। इस निकम्मेपन को एक तरह से नागरिक वर्ग का जरूरी गुण माना जाता था। शहरों में रहने वाले प्रतिष्ठित मालिक (जमींदार) वर्ग के लोग गाँवां को अत्यन्त ही तिरस्कारपूर्वक देखते थे। यही शहरी जमींदार वर्ग शहर में रहने वाले साधारण लोगों को एवं मजदूरां को हमेशा शक की नजर से देखता था। जो केन्द्रीय साम्राज्य सरकार होती थी उसकी दृष्टि भी अपने लोगों के प्रति शक और तिरस्कार की ही होती थी। सन् 215 ए. डी. में (अर्थात् आज से 1800 साल पहले) सिकन्दरिया के सम्राट ने अपने राज्य में मिश्र देश से आये सभी किसानों को निकाल बाहर किया, क्योंकि इन किसानों की जीवनशैली सिकन्दरिया की शहरी जीवनशैली से मेल नहीं खाती थी। यूरोप के अधिकांश साम्राज्य शहर आधारित ही बनाये गये थे। इन शहरों में नगरपरिषदें होती थीं, जो साधारण लोगों या कामकाजी मजदूरां, कारीगरां को नियन्त्रित करतीं थीं। इन नगरपरिषदों में शहर के जाने–माने अमीर एवं प्रतिष्ठित लोग सभी तरह का नियन्त्रण अपने हाथों में रखते थे। साम्राज्यों में गाँव और कस्बे भी हुआ करते थे। इन गाँवां और कस्बां की मृत्यु के बाद भी अमर रहने के लिये, उनके समाधि पत्थरों पर उनका गुणगान लिखा जाता था। अमीरों, जमींदारों एवं प्रतिष्ठित लोगों का वर्ग बिना अपने हाथों से काम किये जिन्दा रहने वाला वर्ग होता था। यूरोप में बहुत पुराने समय से हाथों से काम करने वाले को समाज का प्रतिष्ठित वर्ग हेय दृष्टि से देखता रहा। इस प्रतिष्ठित वर्ग की मान्यता में बिना हाथों से काम किये ही वैभव और विलासितापूर्ण जीवन बिताना आदर्श माना जाता रहा है। मजदूरों एवं कारीगरों का स्थान यूरोपीय समाज में बहुत ही नीचा माना गया। मजदूर, कारीगर वर्ग के लिये हमेशा ही जीवन बहुत ही अपमान भरा और कठिन रहा। यूरोप की इसी मान्यता में से गुलामी प्रथा या दास प्रथा का जन्म हुआ। यूरोप में दुकानदारों को भी बहुत अच्छी नजर से नहीं देखा जाता था। हाथों से किये जाने वाले काम को तिरस्कार से देखने की मान्यता ने ही मजदूर और कारीगर वर्ग का सामाजिक स्तर पर तिरस्कार कराया। यूरोप की इसी मान्यता के चलते मजदूर कारीगर वर्ग का संघर्ष मालिक–जमींदार वर्ग से चलता रहता था।

हाथ के किये जाने वाले कार्य या श्रम का महत्त्व कम होने का एक कारण प्रतिष्ठित वर्ग की प्रतिष्ठा धन–सम्पत्ति से तय होना था। समाज में ऊँचा चरित्र भी उसी को माना जाता था, जिसके पास अकूत धन–सम्पत्ति हो। यूरोपीय समाज के कवि, कहानीकार या नाटककार भी अपनी रचनाओं में धन–सम्पत्ति की अधिक प्रशंसा किया करते थे। यदि किसी कवि, कहानीकार को अपनी किसी रचना में किसी मजदूर, कारीगर, किसान या भेंड़ चराने वाले चरवाहे का वर्णन करना होता था, तो वह वर्णन भी काफी तिरस्कारपूर्वक ही किया जाता था। यूरोपीय समाज में नागरिक उसी को माना जाता था, जो बिना श्रम किये हुए आराम एवं विलासिता में जीवन बिताता था। नागरिकों की ही प्रतिष्ठा हुआ करती थी, उन्हीं का समाज में सम्मान होता था। नागरिकां को ही इंसान भी माना जाता था, बाकी लोगों को इंसान भी नहीं माना जाता था। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के अनुसार एक आदर्श शहर वह होता था, जिसमें नागरिकों की सेवा करने के लिये गुलामों की भरमार हो एवं बड़े व्यापारियों के पास मेहनत करने वाले मजदूरों की फौज हो। प्लेटो के अनुसार जिस शहर के नागरिकां को अपना जीवन चलाने के लिये कुछ भी श्रम नहीं करना पड़े, वह शहर आदर्श शहर माना जाता था। प्लेटो के शब्दों में नागरिक वर्ग

को अपना जीवन बिना शारीरिक कार्य किये ही बिताना चाहिए, यही उनके लिये आदर्श था। बिना श्रम किये खाना और वैभवपूर्ण जीवन बिताना, प्लेटो की नजरों में एक कीमती गुण था। इसलिये जमींदारों, अमीरों, को ही गुण सम्पन्न माना जाता था, बाकी साधारण लोगों में कोई गुण नहीं होता है, ऐसा माना जाता था। यूरोपीय समाज में मान्यता रही कि मजदूरों, किसानों, कारीगरों तथा अन्य श्रम करने वालों का जीवन सुखी नहीं होता था, क्योंकि इन लोगों में गुणों का अभाव होता था। प्रसिद्ध यूरोपीय दार्शनिक अरस्तू का भी मानना था कि जिनके पास धन–सम्पत्ति नहीं है, उनका जीवन सुखकर हो ही नहीं सकता। इसलिये अरस्तू भी कहता कि मजदूर, किसान, कारीगर तथा हाथों से श्रम करने वाले सभी लोगों का जीवन हँसी–खुशी और सुखपूर्वक हो ही नहीं सकता। जिन लोगों का जीवन वैभवपूर्ण और विलासिता में डूबा हुआ हो, उन्हीं को मानव जाति के लिये आदर्श मानने की परम्परा यूरोप में रही। अरस्तू के अनुसार एक आदर्श नागरिक कौन होता था–"कोई व्यक्ति सिर्फ स्वतन्त्र होने से ही आदर्श नागरिक नहीं हो सकता था, बल्कि उसे आदर्श नागरिक होने के लिये उन सभी कायो से भी स्वतन्त्र होना पड़ता था, जिन कार्यों को समाज के साधारण वर्गों के किसान, मजदूर, कारीगर आदि करते थे।" अरस्तू भी मानता था कि साधारण वर्ग के किसान, मजदूर, कारीगर या दुकानदार आदि में कोई गुण नहीं होता था। अरस्तू के अनुसार जो भी गरीब होगा, वह अवगुणों या दुर्गुणों की खान ही होगा। अरस्तू मानता था कि गरीबी अपने आप में वह अभिशाप है जो किसी में गुणों को पनपने नहीं देती और पैदा भी नहीं होने देती। यूरोप की मान्यताओं में इन्सानियत भी अमीरी और समृद्धि से ही पैदा होती थी। इसलिये समाज के धनी–सम्पन्न, जमींदार वर्ग के लोग अपने को दूसरां से श्रेष्ठ मानते थे और इस पर घमण्ड करते थे। इस श्रेष्ठि वर्ग का मानना था कि मानव जाति का प्रतिनिधित्व वे ही करते हैं। यही श्रेष्ठि वर्ग अपने आप को नैतिक रूप से भी बहुत ऊँचा मानता था। यूरोप की मान्यता में जो गरीब हैं, किसान–मजदूर हैं या फिर कारीगरी का काम करने वाले हैं, वे नैतिक नहीं हो सकते। धन–सम्पत्ति एवं समृद्धि को सबसे महत्त्वपूर्ण गुण माना जाता था। श्रेष्ठि वर्ग का कोई व्यक्ति साधारण वर्ग के किसी व्यक्ति को किस तरह से बोल सकता था, उसका एक उदाहरण यह है– डेमोस्थनीज नाम के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति का एक मुकदमा अदालत में ऐशुनियस नाम के एक साधारण व्यक्ति के खिलाफ (अरस्तू के समय में) चल रहा था। उस मुकदमे की सुनवाई के समय डेमोस्थनीज ने कहा, "मेरी कीमत ऐशुनियस से अधिक है, और मैं अधिक महान हूँ, क्योंकि मैं एक समृद्ध परिवार में पैदा हुआ हूँ। मैं गरीबी का मजाक नहीं उड़ा रहा हूँ, बल्कि मैं यह कहने के लिये बाध्य हूँ कि यह मेरा भाग्य था कि मैं अच्छे परिवार में पैदा होने के कारण स्कूल गया और शिक्षित हुआ, और मुझे कोई भी अपमानजनक श्रम कार्य जीवन में नहीं करना पड़ा। जबकि ऐशुनियस तो गरीब परिवार में पैदा होने के कारण ही गुलामी का जीवन बिताता रहा। मैं जिस स्कूल में पढ़ा, उस स्कूल में ऐशुनियस झाड़ू लगाता रहा। इसलिये मुकदमे का फैसला मेरे पक्ष में ही होना चाहिए, क्योंकि मैं न्याय का हकदार हुँ"। इतनी दलील सुनने के बाद न्यायाधीश ने मुकदमे का फैसला डेमोस्थनीज के पक्ष में सुनाया और डेमोस्थनीज जीत गया। इस तरह के सैकड़ों–हजारों उदाहरण यूरोप की अदालतों के मिलते थे जिनसे यह सिद्ध होता है कि न्याय भी उन्हीं को मिलता था, जो समृद्धिशाली होते थे और श्रेष्ठि वर्ग के होते थे। जो लोग भी हाथों से श्रम किया करते थे, उन्हं और उनकी कला को भी नीच और अधम माना

जाता था। कारीगर वर्ग के लोगों की कला एवं कलाकारी को नीच और अधम माना जाता था। कारीगर के काम में कोई सुन्दरता नहीं मानी जाती थी। प्रसिद्ध यूरोपीय दार्शनिक पेनेशियस के अनुसार–"मजदूर बहुत ही नीच एवं अधम होता है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। मजदूर को जो मजदूरी दी जाती है, वह उसकी मेहनत के लिये होती है न कि उसकी कलाकारी

या छोटे व्यापारियों को भी नीच और अधम माना जाता था।

लेकिन जो थोक व्यापारी होते थे, और बड़े पैमाने पर व्यापार करते थे, उन्हें थोड़ा बहुत सम्मान और प्रतिष्ठा मिल जाया करती थी। परम्परा से जो लोग बिना श्रम के जीवन बिताते थे, उनका सम्मान और जो श्रम करके जीवन चलाते थे, उनका अपमान यूरोप में किया जाता रहा है। प्रायः जो लोग बिना श्रम के जीवन चलाने वाले होते थे, पूरी सत्ता उन्हीं के हाथों में रहती थी और समाज का नियन्त्रण भी उन्हीं के हाथों में होता था। इसी श्रेष्ठि वर्ग के लिये राजनीति एक कैरियर के समान ही होती थी। और इस श्रेष्ठि वर्ग की संस्कृति को ही उदारवादी संस्कृति माना जाता था। अरस्तू की मान्यता थी कि– "मजदूरों, किसानों एवं कारीगरों को सरकार चलाने का या समाज की व्यवस्थाओं को संचालित करने का हुनर नहीं होता है।" इसलिये अरस्तू कहता था, कि साधारण लोगों को कभी भी व्यवस्था चलाने के बार में सोचना भी नहीं चाहिए। प्लेटो का मानना था कि जो सम्पन्न वर्ग के या जमींदार वर्ग के लोग हैं, उन्हं सिर्फ अपनी सुख–सुविधाओं के बारे में ही सोचना चाहिए और यह भी सोचना चाहिए कि उनकी सम्पत्ति और अधिक कैसे बढ़े। यूरोप के अन्य कई दार्शनिकों के विचार भी लगभग यही थे। यूरोपकी मान्यता थी कि साधारण वर्ग के लोग (किसान, मजदूर, कारीगर आदि) घृणा के पात्र हैं और उन साधारण लोगों का काम कुलीन या श्रेष्ठि वर्ग के लोगों के लिये वस्तुओं का उत्पादन करना मात्र है। इसलिये यूरोप में अमीर–जमींदार वर्ग को कुछ भी उत्पादन करने की जरूरत नहीं थी, इसलिये उन्हें श्रम करने की भी जरूरत नहीं थी। प्लेटो के अनुसार समस्या तब होती थी, जब कोई जमींदार वर्ग का व्यक्ति अपने लालच के चलते कुछ उत्पादन का काम करता था। अर्थात् प्लेटो कहता था कि–''यदि कोई कुलीन –श्रेष्ठि वर्ग का व्यक्ति उत्पादन करता है, तो वह ऐसा अपने लालच की पूर्ति के लिये ही करता है"। प्लेटो के अनुसार–"अमीर लोगों को अपनी सम्पत्ति से इतना प्यार होता है कि उन्हं अपनी धन–दौलत को छोड़कर दुनिया के किसी दूसरे कार्य की चिन्ता नहीं हो सकती है"। यूरोप में आज भी यही मान्यता प्रचलित है कि अमीरों को और अधिक अमीर होना है और अमीरां से नीचे वाले वर्ग को भी अमीर होते जाना है। इसी को यूरोप में विकास माना जाता है। इसलिये यूरोप में कहा जाता है कि नागरिकां को हमेशा

में लगा रहना चाहिए, जो उनके आर्थिक स्तर को बढ़ाते हों।

यूरोप की मान्यता में मजदूर वही होते थे, या श्रम वही लोग करते थे, जो सामाजिक दृष्टि से नीचे, हेय और घृणित होते थे। इनमें भी मेहनताने के लिये मेहनत करने वाले और दूसरों की गुलामी में रहते हुए मालिक की सेवा करने वाले, ये दो ही तरह के मजदूर या श्रमिक हुआ करते थे। जो दिहाड़ी पर या मेहनताने पर काम करने वाले होते थे, उनकी सामाजिक स्थिति लगभग वैसी ही होती थी, जो किसी मालिक की सेवा में लगे हुए नौकरां की होती थी। दोनों ही तरह के श्रमिकों को घृणा की नजर से देखा जाता था। इन मजदूरों को हमेशा ही मालिक वर्ग

को वे गालियाँ

सुननी पड़ती थीं, क्योंकि वे निम्न वर्ग के माने जाते थे। दूसरी ओर मालिक जमींदार–श्रेष्ठि–अमीर

वर्ग के लोगों का हमेशा गुणगान किया जाता था, क्योंकि परम्परासे एवं मान्यता के अनुसार इसी वर्ग में गुण होते थे। यह श्रेष्ठि वर्ग अपनी मेहनत से कोई कार्य नहीं करता था, लेकिन शासन व्यवस्था को सँभालता था। अपनी मेहनत से कोई कार्य नहीं करना और शहर के ऊपर शासन करना, ये दोनों ही समान माने जाते थे।

रोमन दार्शनिक जेनोफोन के अनुसार–''शारीरिक श्रम किसी पुरुष को स्त्री जैसा बना देता है"। स्त्री होना यूरोप में अच्छा नहीं माना जाता था, इसलिये भी गुणों से सम्पन्न पुरुष (नागरिक) को शारीरिक श्रम नहीं करना चाहिए, यह धारणा काफी अधिक प्रचलित थी। जेनोफोन के शब्दां में–"शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिकों को पूरा दिन आग के सामने बैठना पड़ सकता है या फिर पूरा दिन किसी एक ही स्थान पर बैठना पड़ सकता है। मजदूर को अपने किसी भी मित्र से बात करने का समय पूरे दिन नहीं मिलता है। वह मजदूर जरूरत पड़ने पर अपने शहर की रक्षा भी नहीं कर सकता है। शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर को भयंकर ठंड में या गर्मी में भी काम करना पड़ता है और वह इस तरह काम करने का आदी भी होता है। हर मजदूर को सुबह जल्दी उठना पड़ता है। इन्हीं सब कारणों से श्रमिक पुरुष एक स्त्री जैसा हो जाता है।" यूरोप में जो पुराने अमीर या जमींदार थे, वे सभी अपनी जमीन या अचल सम्पत्ति के दम पर समृद्धिशाली हुए। लेकिन जो नये धनाढ्य यूरोप में पैदा हुए, वे सभी व्यापार की शक्ति से समृद्धिशाली हुए। जो पुराने जमींदार होते थे, वे नवधनाढ्य वर्ग के व्यापारियों को हमेशा ही गाली दिया करते थे और जितना अधिक सम्भव हो उतनी ही आलोचना व्यापारियों की किया करते थे। नवधनाढ्य वर्ग के व्यापारियों के बारे में जो कुछ कहा जाता था, वह कुछ इस प्रकार का होता था, "व्यापारियों की अपनी कोई जडें नहीं होती हैं। व्यापारी हमेशा लालची होता है। व्यापारी सभी बुराइयों की जड़ होता है। व्यापारी हमेशा विलासिता और कमजोरी को ही बढ़ावा देता है। व्यापारी प्रकृति का नाश अपने फायदे के लिये करता है। व्यापारी प्रकृति के नियमों को तोड़ता है। प्रकृति जिस कार्य के लिये न कहती है, व्यापारी वही कार्य करता है।"

रोमन समय में नागरिकों के स्तर सम्पत्ति के आधार पर बाँटे जाते थे। रोमन समाज में नागरिकां के चार स्तर हुआ करते थे। पहला स्तर–साधारण नागरिक। दूसरा स्तर – साधारण नागरिक से कुछ ऊपर (जिन्हें Decurions कहा जाता था)। तीसरा स्तर–घुड़सवारी, तीरन्दाजी आदि हिम्मत के काम कर सकने वाले। चौथा स्तर –सीनेटर (परिषदों के सदस्य, चाहे वे शहर स्तर की हों या राज्य स्तर की या केन्द्रस्तर की)। ध्यान रहे नागरिक वही हो सकता था, जो सम्पत्तिवान हो। अतः दूसरे शब्दों में कहा जाय तो सम्पत्तिवान नागरिकां के चार स्तर हुआ करते थे, ऐसा भी कहा जा सकता है। इस तरह के नागरिकां की पहचान करने के लिये गणना करायी जा सकती थी। गणना के समय नागरिक वर्ग के लोगों की चल एवं अचल सम्पत्ति दोनां का ही आकलन करके उन्हं नागरिकता का स्तर प्रदान किया जाता था। यदि कोई सम्पत्तिवान व्यापारी अपनी सामाजिक हैसियत को बढ़ाना चाहे तो वह अधिक से अधिक जमीन खरीदकर ही ऐसा कर सकता था। बिना जमीन के सम्पत्ति का यूरोप में कोई खास महत्त्व नहीं माना जाता था। कोई व्यक्ति कितना ही अमीर हो यदि उसके पास जमीन नहीं है, तो उसकी अमीरी उच्च स्तर की नहीं मानी जाती थी। और जिसके पास उपजाऊ जमीन हो, वह उच्च स्तर का अमीर माना जाता था। उपजाऊ जमीन और कृषि उत्पादन, ये दोनां ही आमदनी के

स्थायी एवं सबसे प्रमुख स्त्रोत माने जाते थे। अतः ऊँचे स्तर का अमीर होने के लिये उपजाऊ जमीन का मालिक होना जरूरी माना जाता था। व्यापार की आमदनी से होने वाले अमीर को निम्न स्तर का अमीर माना जाता था। हालाँकि व्यापारी व्यक्ति जमीन खरीदकर उच्च स्तर का अमीर बन सकता था। दो अमीरों के बीच यदि भेद करना हो तो, वह भेद जमीन के आधार पर ही होता था। व्यापार को किसी वस्तु या सुविधा हासिल करने का माध्यम माना जाता था, लेकिन जमीन को वस्तु ही माना जाता था। Commerce was a means of acquiring a desirable thing; but the land was the thing itself) यदि कोई व्यक्ति धन सम्पन्न है और उसके पास जमीन भी है, तब यदि वह व्यापार करे तो उसे खराब नहीं माना जाता था। लेकिन उसके पास यदि जमीन नहीं है और वह व्यापार शुरू करे तो उसे खराब माना जाता था। अर्थात् बिना जमीन का मालिक हुए कोई व्यापारी बने और खूब पैसा कमाये तो भी उसकी हैसियत ऊँची नहीं बन पाती थी।

छोटे–मोटे व्यापार को हमेशा ही तिरस्कारपूर्ण नजरों से देखता था यूरोपीय समाज। यदि किसी ने कोई वस्तु खरीदी और तुरंत ही उसे बेच दिया, थोड़ा सा मुनाफा बनाया, तो इस व्यापारिक गतिविधि को यूरोपीय समाज में अच्छी नजरां से नहीं देखा जाता था। लेकिन यदि व्यापार बहुत बड़े पैमाने पर किया जाय, जैसे थोक व्यापार, तो उसे थोड़ा सम्मान समाज में प्राप्त था। कलाकारी और कारीगरी के काम को भी समाज में नीचा माना जाता था। वास्तुशिल्प का व्यवसाय और दवाओं से सम्बन्धित व्यवसाय को समाज में सम्मान मिलता था। लेकिन समाज के प्रतिष्ठित वर्ग के लिये यह दवा व्यवसाय या वास्तुशिल्प का व्यवसाय करने की अनुमति नहीं होती थी। समाज के प्रतिष्ठित या नागरिक वर्ग से नीचे वाले लोग ही वास्तुशिल्प या दवा के व्यवसाय में जाते थे। महत्त्व की बात यह थी कि दवाओं का व्यवसाय या वास्तुकर्म कार्य नहीं माना जाता था, जैसे कृषि कार्य या मजदूरी के कोई कार्य माने जाते थे अथवा कारीगरी का कार्य भी कार्य माना जाता था। अर्थात् शरीर श्रम का प्रयोग करके किया जाने वाला ही कार्य माना जाता था। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात– यदि गुलाम अपने मालिक के लिये शारीरिक श्रम करके कुछ भी करे तो उसे कार्य नहीं माना जाता था। गुलाम के बारे में मान्यता थी कि वह तो अपने मालिक के आदेशों पर ही कुछ करता था, इसलिये गुलाम का किया हुआ कुछ भी कार्य की परिभाषा में नहीं आता था। घर में किसी मालिक की पत्नी शरीर श्रम का प्रयोग करके कुछ भी करे तो उसे भी कार्य नहीं माना जाता था।

प्लेटो के अनुसार (जो प्लेटो ने LAWS नामक पुस्तक में लिखा है।)– "एक सच्चे नागरिक को कोई भी शारीरिक श्रम का कार्य नहीं करना चाहिए"। लेकिन प्लेटो ने इसी पुस्तक LAWS में यह भी लिखा है कि–"यदि कोई नागरिक किसी राजनैतिक पद पर हो, तो उसे प्रतिदिन कई घण्टे अपने राजनैतिक कार्य करने में लगाना चाहिए"। प्लेटो के अनुसार किसी नागरिक को अपनी चल–अचल सम्पत्ति की देखभाल और राजनैतिक पदों के लिये किया जाने वाला कार्य, सिर्फ यही दो चीजें करनी चाहिए। कई बार दार्शनिक स्तर के नागरिक अपना अध्ययन अध्यापन छोड़कर राजनैतिक पदों पर जाया करते थे। प्रसिद्ध दार्शनिक गैलन ने अपने दर्शनशास्त्र का अध्ययन अध्यापन छोड़कर राजनीति में अपना कैरियर बनाया। गैलन का कहना था कि उनके सहयोगी और शुभचिंतकों ने ही उन्हं राजनीति में आने के लिये मजबूर किया। यूरोप की मान्यता में राजनीति में होने वाला कोई भी काम, कार्य नहीं माना जाता था। कवि, कहानीकार,

लेखक, संगीतकार, व्याकरणाचार्य आदि सभी को पगार देकर काम कराया जाता था, और इन सभी को गरीब माना जाता था। ऐसा माना जाता था कि कलाकार, लेखक आदि की व्यक्तिगत सम्पत्ति इतनी कम होती है, इसलिये उन्हं पगार पर नौकरी करनी पड़ती है। इस वर्ग के लोगों के बारे में यही कहा जाता था कि वे कार्य नहीं करते हैं, बल्कि अपने व्यवसाय के लिये अभ्यास

का जीवन मालिकों की

दया पर ही चलता था, क्योंकि वे मालिक ही उन्हं पगार दिया करते थे। यूरोपीय समाज में कवियों, लेखकों, संगीतकारों आदि को स्वतन्त्र नहीं माना जाता था। सभी तरह के अध्यापकों को (चाहे संगीत के हों या व्याकरण विषय के या अन्य किसी विषय के) गरीब शैतान कहा जाता था। इन अध्यापकों की स्थिति गुलामों जैसी ही हुआ करती थी। इनके बारे में माना जाता था कि इनका अपना कोई समय नहीं होता था। अधिकांश अध्यापकों को बड़े–बड़े मालिकों के घर में जाकर पढ़ाना पड़ता था। पढ़ाने का समय मालिक द्वारा ही तय किया जाता था, अर्थात् अध्यापक को कब पढ़ाना है, कितनी देर तक पढ़ाना है, और कितना पढ़ाना है, यह सब मालिकों द्वारा तय किया जाता था। कोई अध्यापक अपने स्वयं के भाग्य का विधाता नहीं हो सकता था। अध्यापकों का भाग्य भी उन मालिकों द्वारा ही तय होता था, जिन मालिकों के द्वारा अध्यापकों को पगार दी जाती थी। मालिकों द्वारा अध्यापकों को जो भी पगार दी जाती थी, उसे पूरा का पूरा ही, अध्यापकों को खर्च करना पड़ता था, यदि अध्यापक चाहें तो उसमं से कुछ बचाकर नहीं रख सकते थे।

सीनेटरों को किसी प्रांत या प्रदेश का गवर्नर बनाकर भेजा जाता था। गवर्नर हो जाने के बाद बहुत ही अधिक धन पगार के रूप में दिया जाता था, ऊपर से रिश्वत आदि लेने की भी खुली छूट होती थी। सीनेटर की प्रतिष्ठा गवर्नर हो जाने के बाद और अधिक बढ़ जाती थी। उसे समाज में एक आदर्श के रूप में देखा जाने लगता था। यूरोपीय साम्राज्य जिन दूसरे देशों तक फैला हुआ था, उन देशों में भी गवर्नर बनाकर सीनेटरों को ही भेजा जाता था। किसी दूसरे प्रदेश में गवर्नर बनने के लिये अच्छी खासी रकम उपहारस्वरूप या रिश्वत में देनी पड़ती थी। कई बार ऐसा भी होता था कि जो केन्द्रीय परिषद गवर्नर को चुनती थी, उस परिषद के सभी सदस्यों को रकम रिश्वत के रूप में देनी पड़ती थी। कई बार गवर्नर अपने पद पर रहते हुए जो भी धन–सम्पत्ति बटोरता था, उसका कुछ हिस्सा केन्द्रीय परिषद को देना पड़ता था। इसी तरह दूसरे देशों में गवर्नर बनने के लिये भी रिश्वत बहुत अधिक मात्रा में देनी पड़ती थी। यूरोप के अलग–अलग देशों का साम्राज्य दुनिया के अलग–अलग देशों में रहा। अतः उन सभी गुलाम देशों में गवर्नर भेजे जाते थे। उनके साथ वही नियम रिश्वत देकर गवर्नर बनने का लागू होता था। जिन गुलाम देशों में गवर्नर पद के सीनेटर को अच्छी आमदनी होने की संभावना होती थी, उस गवर्नर पद के लोगों को रिश्वत की रकम भी उतनी ही अधिक देनी पड़ती थी। ये सभी गवर्नर अपने सम्राट के गुलाम ही माने जाते थे। सम्राट भी इन गवर्नरां का अन्य अधिकारियों की तरह ही अपने साम्राज्य को चलाने में इस्तेमाल करता था। गवर्नर स्तर के सभी अधिकारी सारा दिन सम्राट के गुलाम की तरह ही हुआ करते थे। बस फर्क इतना होता था कि इन उच्च अधिकारियां को राजनैतिक गुलाम की तरह से माना जाता था। गवर्नर स्तर के अधिकारी बस रात को बिस्तर पर सोते समय स्वतन्त्र माने जाते थे। इसी तरह से प्रतिष्ठित परिवारां में देख–रेख करने वाले जो प्रबन्धक होते थे, उनकी भी स्थिति दुविधापूर्ण होती थी।

हालाँकि वे प्रबन्धक देख–रेख का कार्य करते थे होते अपने मालिक के गुलाम ही थे, लेकिन इनकी हैसियत अन्य दूसरे गुलामों से थोड़ी बेहतर होती थी। इन प्रबन्धकां को पुराने परिवारां में से ही चुना जाता था।

एक गवर्नर कई बार सम्राट का कर्मचारी होता था, लेकिन कई बार वह सार्वजनिक अधिकारी भी होता था। जब कोई गर्वनर सम्राट के आदेशों पर कोई निर्णय करता था, तो वह सम्राट का गुलाम कर्मचारी जैसा होता था, और जब वह अपने विवेक से स्वयं कोई निर्णय करता था, तो सार्वजनिक अधिकारी हुआ करता था। यूरोप में बैंकिंग व्यवसाय की शुरूआत श्रेष्ठि वर्ग ने ही की, लेकिन इस बैंकिंग व्यवसाय में सर्वश्रेष्ठ वर्ग के नागरिक नहीं जाते थे। सर्वश्रेष्ठ वर्ग से कुछ नीचे वाले नागरिक इस बैंकिंग व्यवसाय में जाया करते थे। यदि कोई नागरिक सर्वश्रेष्ठ नागरिक वर्ग में जाना चाहे और वह बैंकिंग व्यवसाय में हो तो फिर उसे बैंकिंग व्यवसाय छोड़ना पड़ता था। सर्वश्रेष्ठ वर्ग के नागरिकां को कोई भी काम नहीं करते हुए, बहुत आराम से अपना जीवन बिताना होता था। कोई व्यक्ति एक बार सर्वश्रेष्ठ नागरिक हो जाये, तो चाहे तो बाद में बैंकिंग व्यवसाय शुरू कर सकता था, वैसी स्थिति में यही मान लिया जाता था कि वह सर्वश्रेष्ठ नागरिक अपनी सम्पत्ति को और अधिक बढ़ाने के लिये बैंकिंग व्यवसाय को कर रहा है। यूरोप में मान्यता थी कि हर सर्वश्रेष्ठ नागरिक को अपनी धन–सम्पत्ति को और अधिक बढ़ाने का अधिकार था, इसके लिये उस नागरिक को कुछ भी करना पड़े, जैसे रिश्वत लेनी पड़े, कोई और व्यापार आदि करना पड़े, तो इसकी छूट होती थी। किसी सर्वश्रेष्ठ नागरिक वर्ग के व्यक्ति को अपना परिचय देने के लिये अपनी धन–सम्पत्ति या रियासत को बताने की जरूरत नहीं पड़ती थी। उसका अपने नाम का ही परिचय काफी माना जाता था। यूरोप में जब विजिटिंग कार्ड रखने का चलन शुरू हुआ, तब सर्वश्रेष्ठ वर्ग के लोग उस विजिटिंग कार्ड पर सिर्फ अपना नाम ही छपाते थे, और कुछ भी उस विजिटिंग कार्ड पर नहीं लिखा जाता है। एक विशेष पहचान सर्वश्रेष्ठ नागरिक वर्ग के लोगों की हुआ करती थी वे सुबह–सुबह ही अपनी पूरी पोशाक पहन लेते थे और तभी बाहर निकलते थे। सड़क चलते किसी आम आदमी से किसी सर्वश्रेष्ठ नागरिक के बारे में यदि पूछा जाय, तो वह उस सर्वश्रेष्ठ नागरिक का गुणगान ही करता था। गुणगान कुछ इस तरह किया जाता था–"वे शहर के सबसे महत्त्वपूर्ण और ताकतवर व्यक्ति हैं। उनके पास काफी धन–सम्पत्ति है। उनके दिये गये आर्थिक सहयोग से शहर में कई काम होते रहते हैं। उनके ही आर्थिक सहयोग से शहर के हम जैसे साधारण लोगों का भी मनोरंजन होता रहता है।" एक अजीब विरोधाभास यूरोप में रहा कि यदि कोई सर्वश्रेष्ठ नागरिक वर्ग का व्यक्ति किसी उच्च राजनैतिक पद पर रहते हुए, कोई दूसरा व्यवसाय करे और उस व्यवसाय से धन कमाये, तो समाज और राजनैतिक वर्ग में यह उचित माना जाता था। लेकिन यदि कोई व्यापारी वर्ग का व्यक्ति किसी व्यवसाय से धन कमाये तो, उसे तिरस्कार की नजरों से देखा जाता था। इसके मूल में प्लेटो और अरस्तू जैसे दार्शनिकों का सिद्धान्त और यूरोप की मान्यता ही थी। इस सिद्धान्त और मान्यता के अनुसार प्रत्येक सर्वश्रेष्ठ नागरिक को हमेशा अपने धन–सम्पत्ति की बढ़ोत्तरी करने के लिये प्रयास करना ही चाहिए। चाहे वह प्रयास व्यापार या व्यवसाय करके पूरा किया जाय, अथवा रिश्वत और घूस लेकर किया जाय। यदि कोई उच्च नागरिक वर्ग का व्यक्ति व्यापार करे तो उसे कभी भी व्यापारी नहीं कहा जाता था, उसे उच्च नागरिक ही माना जाता था, और उसकी हैसियत और

सामाजिक ताकत और अधिक बढ़ जाती थी। रोमन साम्राज्य में जो सीनेटर होते थे, उन्हें समुद्री व्यापार करने से रोका जाता था। इसके लिये कुछ कानून भी बनाये गये थे। लेकिन अधिकांश सीनेटर इन कानूनों का उल्लंघन करते हुए समुद्री व्यापार किया करते थे। सीनेटर (सर्वश्रेष्ठ वर्ग का नागरिक) को एक इसी समुद्री व्यापार से रोमन साम्राज्य में रोका जाता था। अर्थात् रोमन सीनेटर समुद्री व्यापार को छोड़कर कोई अन्य व्यापार करें, तो उसके लिये कोई पाबन्दी नहीं होती थी।

किसी भी नागरिक वर्ग के व्यक्ति को कभी भी उसके द्वारा किये गये कार्य से परिभाषित नहीं किया जाता था, जबकि दूसरी ओर साधारण वर्ग के नागरिकों को हमेशा ही उनके काम से परिभाषित किया जाता था। जैसे –चमड़े से जूते–चप्पल बनाने वाले को मोची या चर्मकार और शारीरिक श्रम करने वाले को श्रमिक या मजदूर कहा जाता था। प्रत्येक नागरिक वर्ग के व्यक्ति की अपनी कोई न कोई विरासत होती थी। यदि कोई सर्वश्रेष्ठ वर्ग का नागरिक मर जाये और उसकी समाधि पर लगे हुए पत्थर में लिखा जाय कि वह एक अच्छा किसान था, तो इसका अर्थ यह नहीं होता था कि वह अच्छी खेती करता था या अच्छी खेती की तकनीक जानता था, बल्कि इसका अर्थ होता था कि उसके पास अच्छी उपजाऊ जमीन थी। किसी भी सर्वश्रेष्ठ नागरिक की मृत्यु पर उसकी समाधि बनायी जाती थी और उस पर एक पत्थर जरूर लगाया जाता था। इस पत्थर पर सबसे पहले यह लिखा जाता था कि मरने वाला नागरिक अपने जीवन में किन–किन राजनैतिक और सार्वजनिक पदों पर रहा। फिर उसके बाद यह लिखवाया जाता था कि उसने अपने जीवन में क्या–क्या कार्य किये? फिर यह लिखाया जाता था कि उच्च पदों पर रहने के साथ उसने और क्या व्यवसाय किये? फिर यह लिखा जाता था कि, उस नागरिक की रूचियां क्या–क्या थीं? उसे क्या शौक थे? फिर अन्त में यह भी लिखा जाता था कि उस नागरिक ने अध्ययन किन–किन विषयों का किया? कई बार समाधि पत्थरों पर परिवार के बारे में, पारिवारिक सम्पत्ति के बारे में भी लिखाया जाता था। कई शहरों में सर्वश्रेष्ठ नागरिक की मृत्यु हो जाने पर उस नागरिक की मूर्ति भी लगायी जाती थी। रोम के एक सम्राट की समाधि पर (जिसका नाम मारक्यूस ओरेलियस था) लिखा हुआ है–"महान सम्राट एवं दार्शनिक"। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातें उसके गुणगान में समाधि पत्थर पर लिखी हुई हैं। इसका अर्थ है कि उपर्युक्त सम्राट ने अपने राजनैतिक जीवन के अलावा दार्शनिक शिक्षा भी प्राप्त की और उसे अपना कैरियर भी बनाया।

सामाजिक स्तर पर मजदूरों–श्रमिकों को चाहे जितनी गालियाँ दी जायें, लेकिन सत्ता वर्ग का प्रत्येक सदस्य जानता था कि मजदूरों की राज्य के लिये कितनी उपयोगिता थी। मजदूरों या श्रमिकों और किसानों द्वारा की गयी मेहनत से ही उत्पादन और निर्माण का काम होता था। उसी उत्पादन और रचना का प्रयोग करके समाज का बाकी वर्ग अपने जीवन की जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। समाज के उच्च वर्ग और उच्च वर्ग पर आश्रित अन्य वर्गों की जरूरी आवश्यकतायें समय से पूरी होती रहं, तो इससे समाज में शान्ति बनी रहती थी। इसलिये समाज का सत्ताधीश वर्ग मजदूरों, कारीगरों, किसानों जैसे साधारण वर्ग को हमेशा काम करने की हिदायतें देता रहता था। सत्ताधीश वर्ग का मानना था कि साधारण लोगों को हमेशा कुछ न कुछ काम करना चाहिए, क्योंकि काम नहीं करने से गरीबी बढ़ती है और गरीबी से समाज में अपराध बढ़ते हैं। यूरोप के पुराने दार्शनिकों ने यह कहा है कि राज्य एक ऐसा

सामाजिक ढाँचा है जिसमें साधारण लोगों, समाज के अन्य उच्चवर्गीय लोगों के भले के लिये काम करना ही चाहिए। इन्हीं यूरोपीय दार्शनिकों के अनुसार 'शहर' एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसे प्राकृतिक मानव समाज के नागरिकां को अच्छे तरीके से रहने के लिये ही तैयार किया गया है। प्राचीन यूरोपीय दार्शनिकों के अनुसार समाज के साधारण एवं गरीब लोगों को काम में लगाये रखना समाज के अपराधीकरण को रोकने के लिये बहुत ही जरूरी है। अर्थात् साधारण से यूरोप में कार्य इसलिये कराया जाता था कि कहीं वे अपराध करने में नहीं लग जायें। अतः प्राचीन यूरोप में मजदूरों को अपराध करने से रोकने के लिये ही काम पर लगाया जाता था, अब उस प्रक्रिया में से कोई उत्पादन हो जाये, तो वह मुख्य नहीं माना जाता था। प्लेटो के अनुसार श्रम और व्यापार से समाज के सभी वर्गों को फायदा होता था, लेकिन खासकर उच्च वर्ग या सत्ताधीश वर्ग को अधिक फायदा होता था। लेकिन फिर भी प्लेटो यह नहीं मानता था कि समाज को चलाने में किसानों, मजदूरों, छोटे व्यापारियां की कोई खास भूमिका होती है। प्लेटो मानता था कि प्रत्येक नागरिक के लिये विरासत का होना इतना ही जरूरी होता है, जितना साँस लेने के लिये हवा। कोई व्यक्ति अपने से नीचे वाले का काम तभी करता था, जब बदले में उसे कोई वस्तु या सेवा प्राप्त करनी हो और वह वस्तु या सेवा उसे प्रकृति से नहीं मिल सकती हो। साधारण लोगों के लिये तो कार्य ही एकमात्र संसाधन हुआ करता था। दूसरे शब्दों में साधारण लोगों के पास एक ही संसाधन होता था, उनका श्रम। सम्राट और सत्ताधीशों को यह जानकारी होती कि साधारण लोगों के पास सिर्फ उनका श्रम ही एक संसाधन है, इसलिये सत्ताधीश या सम्राट इस संसाधन को सुरक्षित रखने की कोशिश करते थे। कई बार सम्राट, साधारण वर्ग के श्रमिकों को आजाद भी घोषित कर दिया करता था। सीजर नाम के रोमन सम्राट ने अपने राज्य के लगभग एक तिहाई चरवाहों को स्वतन्त्र कर दिया था। इसी तरह सम्राट ऑगस्टस ने अपने राज्य के गुलाम किसानों के श्रम को सुरक्षित रखने के कानून बनाये। इसी तरह सम्राट वेस्पियन का मानना था कि मशीनां की तुलना में श्रमिकों से अधिक काम कराया जाना चाहिए, ताकि श्रमिक वर्ग में भुखमरी न फैल जाये। प्रत्येक सम्राट की नीति रहती थी राज्य प्रशासन को चुस्त–दुरुस्त रखना और राज्य की शक्ति और क्षेत्र को बढ़ाना, ताकि बाहरी खतरों का मुकाबला किया जा सके। सम्राट पूरे समाज के अभिभावक की तरह ही अपने को मानता था। प्रत्येक सम्राट की इच्छा होती थी कि उसके राज्य का नागरिक वर्ग सुख–समृद्धि में वृद्धि करता रहे और साधारण वर्ग बिना किसी हील–हवाले के श्रम सम्बन्धी कार्य करता रहे।

सत्ता वर्ग से सभी अधिकारी और सम्राट श्रमिकों को हमेशा ही नीच मानते थे। इन श्रमिकों के साथ हमेशा ही दुर्व्यवहार किया जाता था। श्रमिक लोग आपसी बातचीत में सत्ताधीशों की आलोचना करते थे, लेकिन खुलेआम यह आलोचना करना सम्भव नहीं होता था। न तो श्रमिक वर्ग में अपने मालिकों के प्रति कोई सद्भावना होती थी और न ही सत्ताधीश या मालिक वर्ग में अपने श्रमिकों के प्रति कोई सद्भावना होती थी। इसी कारण सत्ताधीश वर्ग मजदूरों का अधिकतम शोषण करने के लिये नियम–कानून बनाता रहता था और मजदूर वर्ग इन कानूनों की अवहेलना करने का प्रयास करता रहता था। अतः मजदूर और मालिक वर्ग में हमेशा तनाव की स्थिति रहती थी। समाज में कई मजदूर ऐसे भी होते थे कि लगातार मालिकों की गालियाँ सुनने के बावजूद अपने श्रम कार्यों में लगे रहते थे और कामों को लगन से करते रहते थे।

यूरोप में समय बीतने के साथ व्यापारी वर्ग में भी धीरे–धीरे वही आदतें आती गयीं, जो सत्ता व्यवस्था चलाने वाले नागरिक वर्ग में हुआ करती थीं। बड़े व्यापारी भी अपनी मृत्यु के बाद समाधि बनवाने की इच्छा रखने लगे। कई व्यापारी अपनी मृत्यु के पूर्व वसीयत में यह समाधि बनवाने की इच्छा व्यक्त करने लगे। कई व्यापारियों की मृत्यु के बाद उनकी समाधियाँ बनाई गयीं और उन पर समाधि पत्थर लगाये गये। उन समाधि पत्थरों पर व्यापारियों के ऐसे चित्र बनाये जाते थे, जिनमें व्यापारी को अपना व्यापार करते हुए दिखाया जाता था। जैसे कोई दुकानदार अपनी दुकान में खड़ा हुआ है, उस समय का चित्र; या कोई व्यापारी अपने गोदाम में है, उसका चित्र आदि–आदि। कई व्यापारी ऐसे भी होते थे, जो अपने मरने के पूर्व ही अपने समाधि पत्थरां को बनवा लेते थे और उन व्यापारियों की मृत्यु के बाद, वही समाधि पत्थर उनकी समाधियां पर लगाये जाते थे। कई बड़े व्यापारियों के घरों में भी उनके व्यापार से सम्बन्धित कलाकृतियाँ लगायी जाती थीं। इसी तरह व्यापारियों और सत्ता वर्ग के नागरिकों के घरों में उनकी सेवा करने वाले जैसे; धोबी, खाना बनाने वाले रसोइये या को दिखाने वाले चित्र भी लगाये जाते थे। कई धन–सम्पत्ति वाले स्वतन्त्र किसानों के घरों में भी इस तरह के चित्र लगे होते थे। धन–सम्पत्ति रखने वाले किसानों को जमींदार ही कहा जाता था। कई घरों में ऐसे भी चित्र हुआ करते थे, जो घर–मालिक के सम्पत्तिवान होने की पूरी कहानी बताते थे। ये चित्र बहुत ही महँगे हुआ करते थे। कई बार किसी नागरिक या व्यापारी के समाधि पत्थर पर भी उनके धनवान होने की कहानी खुदवायी जाती थी। व्यापारियों के समाधि पत्थरों पर उन व्यापारियों के व्यापार के बारे में जरूर लिखवाया जाता था। जैसे–किसी व्यापारी के पत्थर पर लिखाया गया कि–"वह पैसे का लेन–देन करता था"। किसी दूसरे के समाधि पत्थर पर लिखाया गया कि–"वह सुअर के गोश्त एवं गोमांस का बहुत बड़ा व्यापारी था"। किसी की समाधि पत्थर पर यह लिखाया गया कि–"वह बहुत अच्छी केक बनाता था, अच्छी पेस्ट्री भी बनाता था"। कभी–कभी कारीगरी का काम करने वाले अमीर हो जायें तो, वे भी अपनी समाधि पर पत्थर लगवाने का सोचने लगते थे और कभी–कभी ऐसे कारीगरों की समाधि पर पत्थर लगाये भी गये थे। जैसे एक अमीर बर्तन बनाने वाले की समाधि पत्थर पर लिखाया गया कि–"वह बहुत अच्छे बर्तन बनाता था"। कई बार तो किसी व्यापारी दुकानदार के समाधि पत्थर पर बहुत विस्तार से लिखा जाता था कि वह दुकानदार क्या–क्या बेचता था; उसका सेल्स काउंटर कैसा था; किसी भी दुकान में क्या–क्या तरह के औजार थे, जो दुकानदारी में काम आते थे; किसी भी दुकान में क्या–क्या सामान था और कितना था? यह सब समद्धि का प्रतीक माना जाता था। यूरोप में व्यापारी वर्ग या दुकानदार वर्ग मध्य वर्ग में आता था। यह वर्ग अपने को निम्न वर्ग से अलग दिखाने के लिये तरह–तरह से उपाय करता था। मध्य वर्ग अपने रहन–सहन को तड़क–भड़क का बनाकर, घरों की सजावट पर अधिक पैसा खर्च करके, घरों पर महँगी नक्काशी कराकर निम्न वर्ग से अपने को अलग प्रदर्शित करने की कोशिश करता था। यूरोप में यह मध्य वर्ग बहुत बड़ा नहीं था। न तो इस वर्ग की जनसंख्या अधिक थी और न ही पूरी जनसंख्या में इसका कोई महत्त्वपूर्ण प्रतिशत था। यूरोप में यह मध्य वर्ग हमेशा से ही दस प्रतिशत से भी कम रहा। इस मध्य वर्ग में आने वाले कौन–कौन होते थे? बेकरी चलाने वाले, मांस का व्यापार करने वाले, शराब बनाने और बेचने वाले, कपडों को बनाने एवं बेचने वाले, जूते–चप्पल का व्यापार करने वाले आदि

सभी मध्य वर्ग में आते थे। लेकिन इस मध्य वर्ग को कभी भी सर्वश्रेष्ठ नागरिक वर्ग में नहीं माना जाता था। यह मध्य वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त उच्च वर्ग या सत्ता वर्ग के नीचे ही माना जाता था। कई बार ऐसा भी होता था कि मध्य वर्ग के कई व्यापारी उच्च वर्ग के विशिष्ट लोगों से भी अधिक अमीर होते थे, लेकिन उन्हं उच्च वर्ग में नहीं लिया जाता था। कई मध्य वर्ग के लोग शिक्षित होने के बाबजूद भी उच्च वर्ग के लोगों के बराबर नहीं माने जाते थे। हालाँकि मध्य वर्ग के मांस विक्रेता और मांस का उत्पादन करने वाले, इसी तरह से ब्रेड बनाने वाले तथा बेकरी चलाने वाले काफी अधिक अमीर हुआ करते थे और अपने कामकाज को चलाने के लिये गुलामों को नौकर भी रखते थे। जिसको जूता व्यापारी कहा जाता था उसका अर्थ यह नहीं होता था कि वह स्वयं जूते बनाता था, बल्कि गुलामों तथा अन्य कारीगरों को नौकर रखकर जूते बनवाता था और उन जूतों को बेचने के लिये अपनी निजी स्वामित्व की कई दुकानें भी रखता था।

ऊपर लिखी गयी बातां से यूरोपीय आर्थिक बिरादरी को यदि समझा जाय तो यह तीन भागों में बँटी हुई थी। पहले भाग में वे लोग जो साधारण मजदूर या श्रमिक होते थे जो रोज काम करते थे, और सिर्फ उतना ही धन मेहनताने में पाते थे, जिससे उनके एक दिन का खर्चा चल सके। इस साधारण वर्ग को ही निम्न वर्ग कहा जाता था। इस साधारण वर्ग के पास कुछ भी सम्पत्ति नहीं होती थी। दूसरे वर्ग में छोटे–छोटे दुकानदार, छोटे व्यापारी होते थे, जिनके पास दिन भर के व्यापार लायक ही नकद धन रहता था। वे हर एक दिन पहले थोक व्यापारियों से माल खरीदते थे और दूसरे दिन उस माल को बेचते थे। फिर अगले दिन से वही क्रम शुरू होता था। उदाहरण के लिये यदि कोई ग्राहक किसी शराब विक्रेता से अच्छी क्वालिटी की पूरी बोतल शराब माँगे और वह बोतल लेने के लिये शराब विक्रेता को किसी थोक व्यापारी के पास जाना पड़े, तो यह समझना चाहिए कि वह छोटा शराब विक्रेता दूसरे आर्थिक वर्ग में आता था। तीसरे वर्ग में वे लोग आते थे, जो बड़े व्यापारी होते थे, थोक का व्यापार करते थे। जिन्हें माल खरीदने के लिये रोज नहीं जाना पड़ता था। जिनके पास एक साथ अधिक मात्रा में माल रखने के लिये गोदाम हुआ करते थे। इस तीसरे वर्ग के लोगों के मकान आलीशान होते थे। इस वर्ग का रहन–सहन काफी तड़क–भड़क वाला होता था। यह तीसरा वर्ग हमेशा ही समाज के उच्च नागरिक वर्ग की नकल करता था। यह वर्ग अपने मुनाफे का एक बड़ा हिस्सा वैभवपूर्व और विलासिता से रहने में खर्च करता था। यह वैभवशाली जीवन ही इस वर्ग को पहले और दूसरे से अलग करता था। इस तीसरे वर्ग के लोगों के पास अपने घर होते थे। दूसरे का अपना घर नहीं होता था, वे अपनी दुकानों या काम के स्थानां पर ही सो जाते थे। पहले वर्ग के पास तो कुछ भी नहीं होता था, घर होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। तीसरे वर्ग के लोगों के घर साफ–साफ बाहर से पहचाने जाते थे। पहले वर्ग के लोग हमेशा ही किराये के छोटे–छोटे कमरों में रहते थे। ये किराये के कमरे तीसरे वर्ग के लोगों द्वारा बनाये जाते थे। एक कमरे में कई–कई मजदूरों को रहना पड़ता था। मजदूरों को रहने के लिये जो भवन बनाये जाते थे, वे सभी घर जेल की तरह के होते थे। अर्थात् एक ही लाइन से कई–कई कमरे बनाये जाते थे। इन कमरों में खाली स्थान बहुत कम होता था, जबकि तीसरे वर्ग के अमीर व्यापारियों के घर बंगलेनुमा होते थे, इनमें खाली स्थान काफी अधिक होता था। इन घरों के कमरे भी काफी बड़े–बड़े होते थे और घरों में खुला स्थान भी काफी होता था।

यूरोप के शहरों में जानवरों के रहने के लिये जिस तरह के भवन होते थे (खासकर घोड़ों को रहने के लिये), मजदूरों या श्रमिकों के लिये घर भी वैसे ही हुआ करते थे। यूरोप के पूरे समाज में साधारण वर्ग के मजदूरों, श्रमिकों, गुलामों की संख्या कुल जनसंख्या का 80 से 85 प्रतिशत होती थी। इस की जनसंख्या को जीवित रहने के लिये बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ता था। जो भी इस संघर्ष में थोड़ा भी कमजोर पड़े वह भूखा मर जाता था। मजदूर या श्रमिक वर्ग थोड़ा भी आलस्य में नहीं रह सकता था। अर्थात् मजदूर वर्ग के लोग अपने जीवन में अपने मन से कभी अवकाश नहीं रख सकते थे और न ही अपने मन से कुछ उत्सव आदि मना सकते थे। आज के समय में अमरीका में काले–अश्वेत लोगों के साथ जो दुर्व्यवहार होता है, उससे कई गुना अधिक दुर्व्यवहार यूरोप में साधारण वर्ग के मजदूरों के से होता रहा। उच्च वर्ग यह मानता था कि साधारण वर्ग के लोगों में न तो अकल होती है और न ही कोई गुण होता है। मान्यता तो यह भी थी कि, उच्च वर्ग में खुश होने की पात्रता भी नहीं होती थी। यूरोप में सैकड़ों वर्षों तक यह मान्यता रही कि साधारण वर्ग के लोगों में आत्मा भी नहीं होती है। इसलिये साधारण वर्ग के लोग कुछ भी महसूस नहीं कर सकते हैं, ऐसा भी माना जाता था। वास्तविक जीवन में तो इस साधारण वर्ग का बहुत अपमान होता था और बहुत ही संघर्ष का जीवन बिताना होता था। लेकिन उच्च वर्ग के लोग अपने घरों की दीवारों पर जो पेंटिंग या चित्र लगाते थे, उनमें अधिकांश चित्र साधारण वर्ग के लोगों से ही सम्बन्धित होते थे। घरां की दीवारों पर कुछ इस तरह के चित्र होते थे, जैसे–हल जोतता हुआ कोई किसान, जूते बनाता हुआ कोई मोची, भेंड़ों को चराता हुआ गड़रिया, ब्रेड बनाता हुआ कोई बेकर, घुड़सवारी करता हुआ घुड़सवार, तलवारबाजी की कला का प्रदर्शन करने वाले कलाकार, मछली पकड़ने के लिये जाल फेंकता हुआ कोई मच्छीमार, बगीचे में पौधों की साज–सँवार करता हुआ कोई माली, दारू के नशे में चूर कोई शराबी, आपस में लड़ते हुए दो गुलाम आदि–आदि। इन चित्रों में काफी निर्दयता और क्रूरता के साथ साधारण वर्ग के लोगों को दिखाया जाता था। किसी मछुआरे के चित्र में, उसकी एक–एक हड्डी–पसली साफ दिखाई दे, ऐसा चित्र बनाया जाता था। चेहरे के हाव–भाव ऐसे होते थे, जैसे कि मरते हुए किसी व्यक्ति के। कई बार ये चित्र साधारण वर्ग का उपहास उड़ाने वाले व्यंगचित्र जैसे ही होते थे। अधिकांश चित्रां में गरीबी का और बुढ़ापे का भी चित्रण अधिक होता था। लेकिन इन चित्रां को देखने वालों के मन में गरीबी और बुढ़ापे को देखकर उपहास का ही भाव पैदा होता था, न कि करुणा और दया का। शारीरिक रूप से विकलांग लोगों के चित्र भी देखने वाले के लिये मुस्कराहट ही पैदा करते थे। इन चित्रों को यूरोप में प्राकृतिकता से भरपूर माना जाता था। अंग्रेजी में इस चित्रण को NTURALISM कहा जाता रहा, जो आज भी यूरोप में प्रचलित है। साधारण वर्ग के लोगों के साथ कठोर व्यवहार करना, मालिकों की प्रतिष्ठा बढ़ाता था। जो मालिक साधारण वर्ग के नौकरां और गुलामों को जितनी अधिक प्रताड़ना देता था, उसका गुणगान उच्च वर्ग में उतना ही अधिक होता था। उच्च वर्ग के लोगों को अपने धन–सम्पत्ति पर बहुत घमण्ड होता था। इन उच्च वर्ग के लोगों का मानना था कि धन–सम्पत्ति से सब कुछ किया जा सकता है, धन–सम्पत्ति से सब कुछ खरीदा जा सकता है। उच्च वर्ग के लोग अपने समय के खुद मालिक होते थे। अर्थात् वे जैसे भी चाहें, वैसे ही अपना समय गुजार सकते थे। इन उच्च वर्ग के लोगों को ही इंसान या मनुष्य माना जाता था। इन्हीं उच्च वर्ग के लोगों को

नागरिक भी माना जाता था। इन उच्च वर्ग के लोगों की कोई न कोई विरासत जरूर होती थी। अर्थात् ये सभी उच्च वर्ग के लोग ऊँचे खानदान से ताल्लुक रखते थे। इन उच्च वर्ग के को बहुत भाग्यशाली माना जाता था, क्योंकि इन सभी उच्च वर्ग वालों का खानदान ऊँचा होता था। यूरोप में जो भी उच्च वर्ग में पैदा होते, तो उनका जीवन बहुत आसान होता । समाज के उच्च वर्ग और साधारण वर्ग के बीच में बहुत बड़ी विषमता रहती थी। एक ओर भयंकर विलासिता और वैभव, दूसरी ओर भंयकर गरीबी, बदहाली और बेबसी रहती थी। आज के समय में भी कई अफ्रीकी, एशियाई देशों में (जो लम्बे समय तक यूरोप के गुलाम रहे हैं) एक ओर विलासिता वैभव का नंगा नाच देखा जा सकता है, तो दूसरी ओर गरीबी, भुखमरी का महासागर दिखायी देता है। यूरोप में साधारण वर्ग के लोग फटे–पुराने चिथड़े जैसे कपड़े पहनते थे, तो उच्च वर्ग के लोग आलीशान कपड़े पहनते थे। उच्च वर्ग के लोग हमेशा ऐसे ही काम में हाथ डालते थे, जिसमें कोई आर्थिक या राजनैतिक फायदा हो।

यूरोपीय समाज में सभी गुलाम बराबर होते थे, लेकिन जो गुलाम किसी ऊँचे परिवार के साथ जुड़े हुए होते थे, उनकी प्रतिष्ठा बाकी गुलामों से अधिक होती थी। यूरोपीय अर्थव्यवस्था में ऊँचे खानदान से जुड़ा होना या किसी अच्छी विरासत का वारिस होना बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था। आज के समय में अर्थव्यवस्था में कम्पनियों का जो योगदान रहता है, पुरानी यूरोपीय अर्थव्यवस्था में पैतृक सम्पत्ति या विरासत में मिली हुई सम्पत्ति का उतना ही योगदान होता था। यूरोप में जो भी व्यापार या व्यवसाय चला करता था वह परिवार के मुखिया के नाम से और आदेश से चला करता था। उच्च नागरिक वर्ग के लोग भी इस व्यापार को चलाया करते थे। समय के साथ–साथ समाज के अन्य नागरिक वर्ग के लोग (जो उच्च नागरिकां से के

लेन–देन का व्यापार कालान्तर में मध्यवर्ग के नागरिकां में भी काफी प्रचलित हो गया। अतः के खरीदने–बेचने का काम किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं रह गया। अतः सूदखोरी और व्यापार की मदद से मध्य वर्ग में भी काफी अमीर पैदा होने लगे। इन नये अमीरां ने भी धन–सम्पत्ति बनाने के लिये कुछ भी रास्ते अपनाने शुरू कर दिये। जिस तरह से जमींदार वर्ग के लोग येन–केन प्रकार से धन–सम्पत्ति को बढ़ाते रहते थे, उन सभी तरीकां को नवधनाढ्य वर्ग ने भी अपनाना शुरू किया।

यूरोप में प्राचीन समय में अर्थव्यवस्था हमेशा ही निजी जीवन का अंग मानी जाती थी। यूरोप में जब कम्पनियाँ बनना शुरू हुई, तो ये कम्पनियाँ भी पूरी तरह से प्राईवेट कम्पनियाँ ही हुआ करती थीं। इन कम्पनियों के मालिक किसी एक या दो परिवार के सदस्य ही होते थे। परिवार के पूँजी निवेश पर ही ये कम्पनियाँ चला करती थीं। इन कम्पनियों को प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी कहा जाता था। इन कम्पनियों का मुख्य कार्यकारी उसी परिवार का मुखिया होता था, जिस परिवार की यह कम्पनी होती थी। यदि परिवार का मुखिया या कम्पनी का मुख्य कार्यकारी चाहे तो कभी भी कम्पनी को बन्द कर सकता था और दूसरे किसी भी व्यापार को शुरू कर सकता था। इस तरह की कम्पनी को चलाने के पीछे मुख्य मकसद परिवार की सम्पत्ति को बढ़ाना, परिवार की प्रतिष्ठा को बढ़ाना ही होता था। प्रत्येक परिवार के मुखिया का मुख्य उद्देश्य होता था कि विरासत में उसे जो भी सम्पत्ति मिली, उसे और अधिक बढ़ाना, और अपने वारिस को अपने से अधिक सम्पत्ति देकर जाना। यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार की विरासत को

फिजूलखर्ची में उड़ा दे और सम्पत्ति नहीं बना सके, तो उस परिवार की सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती थी और परिवार की सामाजिक हैसियत समाप्त हो जाती थी। बाद में बरबाद हुआ वह परिवार साधारण वर्ग में आ जाता था। समाज में ऐसे परिवार को गिरा हुआ परिवार माना जाता था। इस परिवार को अमानवीय होने का भी दर्जा मिल जाता था। एक बार समाज में गिर जाने के बाद ऐसे परिवार के लोग षड्यन्त्रकारी ही बन जाते थे और हमेशा असंतुष्ट रहते थे। इस तरह के परिवारां के बारे में यह माना जाता था कि परिवार के सभी व्यक्तियों के सभी गुण समाप्त हो जाते थे। हमेशा उच्च वर्ग के बच्चे को बड़ा होकर उच्च पद का अधिकारी ही होना चाहिए और उच्च पद पर रहते हुए अपने परिवार की धन–सम्पत्ति की बढ़ोत्तरी करना, परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ाने का कार्य करना चाहिए, ऐसी सामाजिक मान्यता थी। उच्च परिवार के बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा में ही उन्हं यह सिखाया जाता था कि अपने परिवार की विरासत एवं सम्पत्ति को कैसे सुरक्षित रखना और कैसे उसे बढ़ाना है। यूरोप में हमेशा से ही गरीबी और भुखमरी के शिकार लोगों की संख्या लगभग 80–85 प्रतिशत रही और अमीरां की संख्या लगभग 5 प्रतिशत रही। बाकी 10%

से किसी उच्च वर्ग के व्यक्ति का परिचय नहीं होता था। उदाहरण के लिये प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि टी. एस. इलियट एक बैंक में क्लर्क की नौकरी करता था, लेकिन वह अपने परिचय में कभी–भी यह नहीं कहता था, कि वह बैंक क्लर्क है, वह हमेशा अपने परिचय में यही बताता था कि वह एक कवि है और उच्च वर्ग से सम्बन्ध रखता है। विरासत को सँभालने का अर्थ होता था कि पैतृक सम्पत्ति में मिली जमीन जागीर को सँभालना। जैसे किसी को विरासत में जमीन बहुत मिली हो, तो उस जमीन की देखरेख करना, उसमें क्या फसलें हो सकती हैं, उनके बारे में जानकारी करवाना और उसके आधार पर फसलें करवाना, उन फसलों से हुए उत्पादन को बाजार में बिकवाना आदि सभी कार्य करवाने होते थे। अक्सर अमीर लोग अपना धन ब्याज पर कर्जे के रूप में उठाते थे। कोई भी अमीर आदमी अपने धन को घर में बेकार पड़ा नहीं रखता था। ये सभी तरह के उर्पर्युक्त काम हरेक मालिक करता रहता था। मालिकों द्वारा जो धन–सम्पत्ति एकत्रित किया जाता था, वह कई–कई तरीकों से किया जाता था। जैसे, विरासत में मिली सम्पत्ति से, व्यापार से, रिश्वत और घूस लेकर, दहेज लेकर शादी करने से, अपने अधिकारों और पद का दुरुपयोग करके, अपने गुलामों–नौकरों का शोषण करके, गैर कानूनी टैक्स वसूल करके।

साधारण लोगों को ही यूरोप में जीवित रहने के लिये हाड़तोड़ मेहनत करनी पड़ती थी। उच्च वर्ग के लोग तो सरकार चलाते थे और मध्य वर्ग के लोग व्यापार आदि करते थे। उच्च वर्ग के व्यक्तियों को यही जरूरी माना जाता था कि वे सरकारों एवं व्यवस्था को चलाने के काम में लगे रहें, चाहे वे सरकारें नगर स्तर की हों या राज्य स्तर की हों अथवा केन्द्र स्तर की हों। सरकारों को चलाना, उच्च वर्ग के अधिकार क्षेत्र में माना जाता था। सम्राट सभी सरकारों का प्रमुख एवं राज्य का भी प्रमुख माना जाता था। साथ ही साथ सम्राट को समाज का भी प्रमुख माना जाता था। कभी–कभी ऐसा भी होता था कि अत्यधिक उच्च पदों पर रहने वाले प्रमुख अपने खेतों में गुलामों को खेती करना सिखाते थे। सम्राट को समाज और राज्य व्यवस्था का नैतिक प्रमुख भी माना जाता था। दूसरे शब्दों में सम्राट को सर्वगुणसम्पन्न माना जाता था।

के सामने सम्राट एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत रहता था। भले ही कोई

सम्राट कितना भ्रष्ट हो, कितना ही निकृष्ट और चरित्रहीन हो, और अन्य अवगुणों वाला हो; उसे आदर्श ही माना जाता था। सम्राट को सर्वगुणसम्पन्न, सर्वशक्तिशाली माना जाता था। इसी तरह उच्च पदोंपर विराजमान अधिकारियों को भी बहुत क्रियाशील, ऊर्जावान, प्रेरक, हिम्मती आदि–आदि माना जाता था। जो अधिकारी अपने से नीचे के कर्मचारियों को प्रेरित नहीं कर सके, जो अपने सहकर्मी अधिकारियों से दोस्ती नहीं कर सके, अपनी प्रतिष्ठा को नहीं बढ़ा सके, उस अधिकारी को अच्छा नहीं माना जाता था। एक उच्च अधिकारी के बारे में हमेशा यह अपेक्षा रहती थी कि वह खजाने के लेखे–जोखे को बहुत बारीकी से देख सके, यदि लेखा–जोखा लिखित रूप में है, तो उसकी एक–एक पंक्ति को पढ़कर समझ सके। उच्च वर्ग के लोग व्यापार में भी काफी पैसा निवेश करते थे। एक ही परिवार कई–कई व्यापारां में पूँजी लगाता था। एक प्रसिद्ध रोमन परिवार के मुखिया कारो ने मछली पालन, बेकरी, आटा मिल, स्टार्च की फैक्टरी, बागवानी और खेती तथा स्प्रिंग बनाने के कारखाने में पूँजी निवेश कर रखा था। यह कारो परिवार सूदखोरी का भी व्यवसाय करता था। बाद में इस परिवार ने समुद्री व्यापार भी शुरू कर दिया, अर्थात् एक देश से कुछ खरीदना और समुद्र के रास्ते जाकर किसी दूसरे देश को बेचना। उच्च परिवारां के लोग हमेशा लाभकारी व्यापारिक कार्यों को करने के लिये उधत रहते थे। किसी भी कार्य में आर्थिक लाभ हो, तो वही कार्य किया जाता था। यदि किसी को मारने में किसी की जान लेने में या कत्लेआम के कामों में लाभ हो, तो उच्च परिवारां के लोग कत्लेआम का भी कार्य करते थे। अर्थात् आर्थिक लाभ को केन्द्र में रखकर कुछ भी करना उच्च वर्ग के परिवारां के लिये सामान्य माना जाता था। यह बिल्कुल भी जरूरी नहीं माना जाता था कि उच्च वर्ग के लोग वही व्यापार करें, जिसका उन्हं अनुभव हो। अर्थात् बिना अनुभव के भी नये–नये में उच्चवर्गीय लोग शामिल होते रहते थे। माना तो यह जाता था कि कार्य कितना ही नया हो, उसे करके ही अनुभव होता है। इस व्यापारिक कार्य में गोपनीय सूचनाओं का बहुत महत्त्व माना जाता था। व्यापार के बारे में जिसके पास अधिक गोपनीय सूचनायें होती थीं, उसे भाग्यशाली माना जाता था, क्योंकि उस समय में कोई खुला बाजार नहीं हुआ करता था। और कोई स्वस्थ और खुली प्रतियोगिता भी व्यापारियों के बीच में नहीं होती थी। व्यापार में राजनैतिक प्रभाव का बहुत महत्त्व होता था। यदि किसी उच्च परिवार का मुखिया किसी राजनैतिक पद पर विराजमान हो और फिर व्यापार के क्षेत्र में उतरे, तो उसे अपने राजनैतिक पद का बहुत लाभ मिलता था। राजनैतिक पदों पर विराजमान लोगों को हर तरह की व्यापारिक सूचना उपलब्ध रहती थी। उसका प्रयोग व्यापारिक लाभ के लिये किया जाता था। चूँकि राजनैतिक पदों पर विराजमान लोग ही नीतियाँ और कानून बनाते थे, अतः उन राजनैतिक को पता रहता था कि क्या नीति और कानून व्यापार के क्षेत्र में बनने जा रहे हैं? नीतियाँ और कानून बनने के पहले ही राजनीतिक लोग अपने व्यापारिक हितां को साधने के लिये, इनका उपयोग करते थे। इस सत्ताधारी वर्ग के नजदीक रहने वाला एक वर्ग होता था, जो नीति और कानून विषयक जानकारियों को सत्ता वर्ग के इशारे पर इधर–उधर फैलाता था। सत्ताधारियों के नजदीक रहने वाला यह वर्ग, इन गुप्त जानकारियों का अपने स्वार्थ के लिये दुरुपयोग भी करता रहता था। किसी सत्ताधारी वर्ग के व्यापारी की सम्पत्ति कई–कई स्त्रोतां से

से आता था। इन नौकरों–गुलामों को मालिक के आदेश पर ही व्यापारिक कार्यों में भी लगाया

जा सकता था। मालिकों के व्यापारिक स्टाफ में अधिकांश कर्मचारी उस मालिक के गुलाम ही होते थे। मालिक के आदेश पर ही उसके नौकर सभी व्यापारिक कार्य किया करते थे। लेकिन का पूरा लाभ मालिक के ही पास जाता था। मालिक के स्टाफ में काम करने वाले नौकर–चाकर दिन प्रतिदिन अपने मालिक का लाभ कैसे बढ़ाया जाय, इसके बारे में ही सोचते और योजना बनाते थे। ये नौकर–चाकर ही मुख्य व्यापारिक लेन–देन किया करते थे। मालिक के आदेशों पर कार्य करने वाला प्रबन्धक या कारिन्दा ही हिसाब–किताब भी रखता था। जो कुछ भी उत्पादन हुआ, उसे बेचना या कुछ व्यापार के लिये खरीदना, यह सारे कार्य प्रबन्धक ही करता था। कई प्रबन्धक स्वतन्त्र पैदा होते थे, लेकिन अच्छा कैरियर बनाने के लिये वे किसी भी मालिक के गुलाम बनना पसन्द करते थे। मालिक ऐसे प्रबन्धमों को अधिक विश्वास करता था जो स्वतन्त्र पैदा होकर गुलामगिरी को पसन्द करते थे। कई मालिक तो अपने प्रबन्धकों पर इतना विश्वास करते थे कि सालों–साल तक वे प्रबन्धकां के बनाये हुए एकाउण्ट (लेखा–जोखा) की जाँच भी नहीं करते थे। किसी भी प्रबन्धक से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने मालिक के आय एवं व्यय का लेखा–जोखा हमेशा तैयार रखे, ताकि मालिक कभी भी उसे देख सके। मालिकों के मरने पर, गुलामां के सेवानिवृत्त होने पर या सम्पत्ति के बिकने पर हमेशा ही पूरा हिसाब देखा जाता था। कभी–कभी मालिक के नाराज होने पर भी एकाउण्ट की जाँच की जाती थी। यदि कोई प्रबन्धक समय पर लेखा–जोखा पेश करने में असफल होता था, तो उसे बहुत ही तकलीफों का सामना करना पड़ता था, उसकी नौकरी भी जा सकती थी। जो भी प्रबन्धक अपने मालिक को लेखा–जोखा ठीक रखने में प्रसन्न करता था, उसको काफी प्रशंसा मिलती थी। ऐसे प्रबन्धक की मृत्यु पर उसकी समाधि पर लगाये गये पत्थर में मालिक द्वारा की गयी प्रशंसा लिखी जाती थी। जो जमींदार होते थे, उनकी आमदनी और व्यय का लेखा–जोखा वे गुलाम किसान ही रखते थे जो जमींदार के खेतां में काम करते थे। जमींदारों के मरने पर अक्सर ही एकाउण्ट सामने रखे जाते थे। जमींदार के ऊपर किसी का कुछ लेन–देन निकलता था, उसका हिसाब भी तभी लगाया जाता था। यदि कोई जमींदार अपनी सम्पत्ति को बेचता था, तब भी हिसाब–किताब एवं लेन–देन का ब्यौरा सामने रखा जाता था। के कर्जदार ही होते थे। एकाउण्ट इस तरह से बनाये जाते थे कि हमेशा किसान कर्जदार ही रहं। यदि कोई किसान अपने कर्जों को वापस लौटाने के लिये प्रयास करता था, तो उस किसान को अच्छा नहीं माना जाता था। यदि कोई किसान अपने जमींदार का कर्जा वापस कर दे तो उसे स्वामिभक्त नहीं माना जाता था, उसे विश्वासघाती माना जाता था। यह कर्ज मालिक एवं उसके गुलाम के बीच एक मजबूत सम्बन्ध माना जाता था। जो श्रेष्ठ लोग समाज के होते थे, वे हर व्यापार में दखल रखते थे। ग्रामीण इलाकों में तो कई श्रेष्ठ लोग अपने घर को भी व्यपारिक केन्द्र बना लेते थे, जहाँ पर वस्तुओं का क्रय विक्रय भी होता था और वस्तुओं का व्यापारिक प्रदर्शन होता था। जमींदार लोग अपने प्रबन्धकों के साथ व्यापार में अक्सर खामोश (मूक) हिस्सेदार के रूप में मौजूद होते थे, लेकिन समाज के श्रेष्ठ लोग अपने प्रबन्धकों एवं नौकर–चाकरों के साथ व्यापार में सक्रिय भागीदारी रखते थे। समाज के श्रेष्ठि वर्ग के लिये भी काम करने वाले प्रबन्धक, नौकर–चाकर आदि होते थे। समाज में यह मान्यता थी कि जो भी कुछ खरीदेगा बेचेगा, तो अक्सर ही विवादों में फँसेगा, लेकिन वही समृद्धिशाली भी बनेगा।

इस पूरे व्यापार कर्म में लाभ प्रधान तत्व माना जाता था। अधिक उत्पादन और अधिक व्यापार का एक मात्र उद्देश्य अधिक लाभ कमाना ही माना गया, क्योंकि लाभ कमाना ही होता था। इसी में से पूँजीवाद निकला है। पूँजीवाद को निष्ठूर एवं बेरहम भी इसीलिये माना गया
क्योंकि लाभ कमाना ही उसकी प्रधान मान्यता रही है। रोमन समय में अभिजात्य वर्ग के लोग संस्कृति एवं दर्शन में भले ही कुछ विशेष लगते रहे हों, लेकिन लाभ के लिये उनके मन में लालच की भावना हमेशा ही प्रचण्ड रही। अभिजात्य वर्ग के अधिकांश लोग हमेशा ही आपस में के
लिये ही होता था। सामान्य रूप से सभी सीनेटर अभिजात्य वर्ग से ही आते थे, और ये सीनेटर बिजनैसमैन भी होते थे। समाज के लोगों के लिये यही अभिजात्य वर्ग के लोग आदर्श माने
जाते थे। अभिजात्य वर्ग के लोग जब अपने घरों के फर्नीचर से ऊब जाते थे, तब उस फर्नीचर की नीलामी की जाती थी। अक्सर राजा भी अपने फर्नीचर को इसी तरह से नीलाम किया करते थे। फर्नीचर के साथ–साथ घरों के अन्य सामान भी नीलाम किये जाते थे। अभिजात्य वर्ग के

के पास जो भी धन अतिरिक्त रूप से रहता था, वह ब्याज पर दिया जाता था। अभिजात्य वर्ग के लोग अपने ही मित्रां एवं रिश्तेदारां को भी ब्याज पर ही धन दिया करते थे। बिना ब्याज के जो धन दिया जाता, वह बहुत ही कम सिर्फ कुछ भाग्यशाली लोगों को दिया जाता था। यदि किसी लड़की का पिता अपनी लड़की का दहेज देने में देरी कर दे तो उस देरी के दिनों का ब्याज दहेज के साथ ही देना होता था। सूदखोरी यूरोपीय समाज में हमेशा
से रही है। समाज के अभिजात्य वर्ग से सभी लोग सूदखोरी के कार्य में लगे होते थे। कोई भी कार्य चाहे जितना आनन्ददायक हो, बिना पैसे के न तो किया जाता था और न ही होता था। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष द्वारा छोड़ दी जाय, तो उसे भी पैसा दिया जाता था। उस स्त्री को परेशानी होने के कारण यह पैसे का भुगतान किया जाता था। यदि किसी विवाहित स्त्री को
उसका पति छोड़ दे, तो उसे भी पैसा अपने पति से मिलता था। ऐसी मान्यता थी कि स्त्री को जो भी तकलीफें या परेशानी होगी (छोड़ दिये जाने पर) उसकी भरपाई इस पैसे से होती है।
यदि किसी प्रेमिका का अपने प्रेमी के साथ सम्बन्ध टूट जाये तो उस प्रेमिका को सभी उपहार वापस मिलते थे, जो उस प्रेमिका ने अपने प्रेमी को दिये होते थे। यदि प्रेम सम्बन्धों के मामले
किसी अदालत में पहुँच जायें तो अदालतें भी एक दूसरे के उपहारों को वापस कर देने का फैसला सुनाती थीं। वेश्यावृत्ति के कार्य में लगी हुई महिलाओं के बीच में भी उपहार स्वीकार करने की परम्परा यूरोपीय समाज में रही। किसी प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को कितना प्यार किया, यह जानकारी उस प्रेमिका को दिये गये उपहारों से अथवा दिये गये पैसे से पता चलता था। अपने–अपने प्रेमियों से उपहार स्वीकार करने की परम्परा वेश्याओं के बीच में तथा अभिजात्यवर्गीय समाज में प्रचलित रही है। यूरोप के अभिजात्य वर्गीय समाज में यह मान्यता थी कि महिलाओं (प्रेमिकाओं–पत्नियों) को उपहार देना, उन महिलाओं द्वारा अपने प्रेमियों को दिये गये सुख
(शारिरिक) एवं उन प्रेमियों के लिये किये गये काम के एवज में है। जिस तरह से पुरुष (पति) अपनी पत्नी के परिवार वालों से दहेज लेने के लिये बहुत ही अपेक्षा रखते थे, उसी तरह से पत्नी अपने पति से उपहार की बहुत अधिक अपेक्षा रखती थी। व्यभिचार करने वाली स्त्रियाँ भी व्याभिचारी पुरुष से उपहार की अपेक्षा रखती थीं। यह उपहार सामान्य रूप से पैसों के रूप में या वस्तुओं के रूप में होता था।

सभी व्यापार का प्रमुख उद्देश्य सम्पत्ति बनाना ही होता था। सम्पत्ति बनाने के कई तरीके समाज में प्रचलित थे। उदाहरण के लिये वस्तुओं का क्रय–विक्रय, दहेज के द्वारा, हिंसा एवं में पूँजी निवेश करके, घूसखोरी के द्वारा (रिश्वत लेने के माध्यम से), किसी को धोखा देकर, जमींदारी के द्वारा आदि तरीकों से सम्पत्ति बनाने का कार्य किया जाता था। धोखाधड़ी, हिंसा, चोरी, लूट–पाट आदि को भी व्यापारिक कार्य ही माना जाता था। व्यापारिक कार्य माँग और आपूर्ति के सिद्धान्त के अतिरिक्त समाज के प्रभावशाली

से सम्पर्क के आधार पर ही होता था। समाज के अभिजातीय वर्ग के लोगों के पास ही अधिकांश जमीन (भूमि) रहा करती थी। समाज में दो ही वर्ग प्रमुखता से दिखायी देते थे। एक ओर जमीदारों, व्यापारियों, राजनैतिक हस्तियों का बहुत ही धनवान वर्ग; तो दूसरी ओर अत्यन्त गरीबी, दु:ख–दारिद्र्य में फँसा हुआ गुलाम मजदूरों, किसानों, कारीगरां आदि का वर्ग। औषधियों का व्यापार अत्यन्त ही महँगा हुआ करता था। औषधियों को खरीद पाना सामान्य लोगों के बस की बात नहीं थी। अत्यन्त धनी वर्ग के लोग ही औषधियाँ खरीद सकते थे। अधिकांश श्रेष्ठ वर्ग के लोग शहरों में ही रहते थे। शहरों में रहकर ही श्रेष्ठ वर्ग के लोग अपने व्यापार को नियंत्रित करते थे। अधिकांश जमींदार भी शहरों में ही रहते थे। गाँव में तो जमींदारों की भूमि एवं बाग–बगीचे आदि होते थे, जिनकी देखरेख के लिये नौकर चाकर, सुपरवाइजर, मैनेजर आदि लोग रहते थे। शहरों में रहने वाले अभिजातीय लोग भी शहरों को चलाने का कार्य किया करते थे। अर्थात् शहरों का संचालन करने के लिये जो भी राजनैतिक संस्थायें होती थीं, उन पर पूरा कब्जा इसी श्रेष्ठि वर्ग का ही होता था। खाली समय में यही श्रेष्ठि वर्ग के लोग दर्शनशास्त्र, संस्कृति, सभ्यता आदि के अध्ययन का काम करते थे। अधिक उम्र हो जाने पर ये लोग रिटायर होकर आराम से जीवन बिताने के लिये जो भी न्यूनतम कार्य होता था वही करते थे। प्रत्येक जमींदार की सम्पत्ति के तीन हिस्से हुआ करते थे। एक हिस्सा वह जो खेती योग्य जमीन के रूप में, जिसमें खेती करने वाले उपकरण एवं गुलाम किसान भी शामिल होते थे। दूसरा हिस्सा घर–इमारतें आदि एवं उनकी देखभाल करने वाले नौकर चाकर आदि। तीसरा हिस्सा धन–सम्पत्ति, सोना (कैश आदि), दूसरां को उधारी पर दिया हुआ धन, ब्याज से होने वाली कमाई आदि–आदि। बाद के दिनों में जब यूरोप में बैंकिंग तन्त्र प्रारम्भ हुआ तो तीसरे हिस्से में बैंक खाते, बैंक में जमा धन आदि भी शामिल होने लगे।

यूरोपीय समाज में सूदखोरी का कार्य काफी ऊँचा माना जाता रहा। सूदखोरी के कार्य में सिर्फ बैंक या बैंकर्स ही नहीं, बल्कि समाज के राजनैतिक–आर्थिक रूप से नियंत्रित करने वाले लोग ही अधिक शामिल हुआ करते थे। धन–सम्पत्ति अर्जित करने के सबसे अच्छे तरीकों में सूदखोरी को गिना जाता था। अभिजात्य वर्ग के सभी परिवारां में सूदखोरी के कार्य के लिये एक अलग ही बाक्स (Strong box) होता था, जिसे 'कैलेण्डरियम' कहा जाता था। इस स्ट्रांग बाक्स में एक कैलेण्डर होता था, जिसमें कर्जदारों के द्वारा धन वापसी की तारीखें अंकित होती थीं। अर्थात् किस कर्जदार द्वारा कब धन लिया गया और कब वह वापस करेगा आदि सूचनायें उस कैलेण्डर पर अंकित होती थीं। हरेक सूदखोर का अपना–अपना नियम होता था सूदखोरी के कार्य के लिये। सभी सूदखोर एक ही तरीके से कर्जा नहीं दिया करते थे। कुछ सूदखोर अपनी सम्पत्ति का थोड़ा सा हिस्सा कर्जे पर देते थे, तो कुछ सूदखोर अपनी सम्पत्ति का काफी बड़ा हिस्सा कर्जे में देते थे। कुछ सूदखोर थोड़ा–थोड़ा धन अधिक कर्जदारों को देते थे, तो

को ही दिया करते थे। कर्ज देते समय सूदखोरों द्वारा एक नोट लिखकर स्ट्रांगबाक्स में रख लिया जाता था, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रह सकता था। ये नोट्स एक सूदखोर से दूसरे सूदखोर को बेचे भी जाते थे। यदि किसी सूदखोर ने किसी कर्जदार को कर्ज दिया, तो उसका नोट बना। अब यदि कोई दूसरा सूदखोर उस कर्जदार को अपने नियन्त्रण में लाना चाहता था, तो पहले वाले सूदखोर को वह कर्ज की रकम (ब्याज सहित) देकर नोट्स खरीद लेता था। इस तरह वह कर्जदार उस दूसरे सूदखोर का कर्जदार हो जाता था। अक्सर सूदखोर अपनी वसीयत में अपने कर्जदारों का वर्णन किया करते थे और अपने उत्तराधिकारियों को उन कर्जदारों से वसूली का अधिकार सौंपते थे। इस तरह से सूदखोरी पीढ़ी दर पीढ़ी चला करती थी। सूदखोरी का कार्य उतना ही सम्मानजनक माना जाता था, के क्रय–विक्रय और व्यापार एवं खेती–बाड़ी के कार्य आदि को सम्मानजनक माना जाता था। समाज के पैसे वाले लोगों की चापलूसी करने वाले बहुत लोग होते थे। चापलूसों की भीड़ हमेशा ही पैसे वालों को घेरे रहती थी। चापलूसी करने वालों की दो ही प्रबल इच्छायें रहती थीं, एक तो जिस अमीर व्यक्ति की वे चापलूसी कर रहे हैं, उससे कोई आर्थिक–राजनैतिक लाभ मिले। दूसरी प्रबल इच्छा यह रहती थी कि जिस अमीर व्यक्ति की चापलूसी की जाती थी, वह अपनी मृत्यु के समय लिखाई जाने वाली आखिरी वसीयत में उन चापलूसों का नाम लिखवा दे। यह परम्परा पूरे यूरोप में रही। हरेक धनवान व्यक्ति हमेशा ही चापलूसों से घिरा रहता था। ये चापलूसों की भीड़ ही उसे बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनाया करती थी।

सामान्य रूप से यूरोप के प्रत्येक परिवार में चार से पाँच तक बच्चे हुआ करते थे। बच्चों की संख्या को परिवार में लाभकारी माना जाता था। लेकिन इन पाँच में से लगभग दो ही बच्चे 20 साल की उम्र तक या उससे अधिक उम्र को पार कर पाते थे। रोमन समय में भी बच्चां की संख्या अधिक होना अच्छा माना जाता था। रोमन साम्राज्य में भी औसतन एक परिवार में 5 बच्चे ही होते थे। वसीयत करने वालों को रोमन–नियम कानूनों के तहत काफी कुछ आजादी मिली हुई थी। प्रत्येक एक पीढ़ी के बाद सम्पत्ति का बँटवारा होता रहता था। परिवार में पिता की मृत्यु के बाद ही सम्पत्ति का बँटवारा हो सकता था। पिता अपनी वसीयत अपनी मर्जी के अनुसार ही करता था। किस को क्या देना है क्या नहीं, पूरा पिता की मर्जी पर ही निर्भर होता था। किसी–किसी परिवार में पिता की मृत्यु के बाद माता भी वसीयत करने की अधिकारी हो सकती थी। कोई तलाकशुदा महिला भी अपनी सम्पत्ति का वारिस किसी को नहीं बना पाये, तो उसकी सम्पत्ति पूर्व पति के पास चली जाती थी। अपवादस्वरूप कभी–कभी पिता के जीवित रहते हुए भी किसी पुत्र को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया जाता था। और यदि पुत्र की मृत्यु हो जाये तो फिर वापस वह सम्पत्ति पिता के पास पहुँच जाती थी। कभी–कभी कोई तलाकशुदा महिला अपनी सम्पत्ति अपने बेटे के नाम कर देती थी, तो उस बेटे का पिता बेटे को बहला–फुसलाकर वह सम्पत्ति अपने कब्जे में ले लेता था। इसको समाज में खराब नहीं माना जाता था। यदि किसी परिवार में पुत्र नहीं हो तो सम्पत्ति बेटी को दी जा सकती थी या बेटी के बेटे को भी दी जा सकती थी। परिवार में बेटे के लिये कई विवाह भी किये जा सकते थे। हालाँकि जो पिता अपनी सम्पत्ति बेटी को वसीयत में देता था उसकी समाज में आलोचना की जाती थी। धन–सम्पत्ति एकत्रित करने के यूरोपीय समाज में और भी कई निष्ठुर तौर–तरीके

रहे। रोमन समय में पुलिस जैसी कोई खास व्यवस्था नहीं होती थी। सम्राट या राजा के व्यक्तिगत सुरक्षाकर्मी होते थे, जो कभी–कभी दंगों, लूट–पाट आदि को नियंत्रित करने की कोशिश करते थे। लेकिन समाज के लोगों को सुरक्षा आदि देने का काम ये नहीं करते थे। की सुरक्षा करने का कोई भी तन्त्र नहीं था; न तो पुलिस न ही न्याय देने के लिये न्यायालय, न ही कोई सरकारी अधिकारी जो लोगों के दुख–दर्द सुन सके और उन्हें दूर कर सके। प्रत्येक व्यक्ति या परिवार को अपनी सुरक्षा स्वयं करनी होती थी और अपने लिये न्याय स्वयं प्राप्त करना होता था। ऐसी परिस्थिति में जो गरीब एवं कमजोर वर्ग के लोग होते थे, उन्हें अपनी सुरक्षा की शरण में या गुलामी में ही रहना होता था। लेकिन जब शरणदाता ही अन्याय और अत्याचार करे तो कहाँ जायें? ऐसे में कोई रास्ता नहीं होता था। सम्राट को शिकायत की नहीं जा सकती थी। सम्राट को इस तरह के मामले में दखल देने की कोई रुचि भी नहीं होती थी। कमजोर एवं गरीब लोगों को संरक्षण देने वाले यदि एक दूसरे के खिलाफ लड़ें और अत्याचार करें तो इन संरक्षकों की शरण में आये लोगों को ही यह सब भुगतना पड़ता था। समाज के इन संरक्षकों की अपनी निजी पुलिस एवं न्यायतन्त्र भी निजी होता था। इन संरक्षकों की अपनी निजी जेलें भी हुआ करती थीं। समाज के लोग हमेशा ही अत्याचारियों के भय में डूबे रहते थे। ये अत्याचारी स्थानीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर सक्रिय रहते थे और इनका डर समाज के सभी कमजोर एवं गरीबां के मन में हमेशा ही रहता था। एक ताकतवर व्यक्ति अक्सर ही अपने कमजोर पड़ोसी की सम्पत्ति को छीन लेता था। एक ताकतवर व्यक्ति को किसी कमजोर एवं निरीह व्यक्ति पर अत्याचार करने में भी कोई संकोच नहीं होता था। कई बार एक ताकतवर व्यक्ति दूसरे ताकतवर व्यक्ति पर भी हमला करके उसकी सम्पत्ति की लूट–पाट करता था। दो ताकतवरों के आपसी झगड़े कई बार राज्य के प्रमुख गर्वनर के पास ले जाये जाते थे। यदि गवर्नर फुरसत में हो तो इन झगड़ों का निपटारा कर सकता था, वह भी गवर्नर की इच्छा पर ही निर्भर होता था। कभी–कभी गर्वनर उन झगड़ालू जमींदारों की आपस में दोस्ती भी करा देता था। अक्सर ही ऐसा होता था कि जिस भी जमींदार का गर्वनर के साथ अच्छा सम्बन्ध हो, फैसला उसी के पक्ष में हो जाता था। गर्वनर जो कर दे वही न्याय माना जाता था। यह एक तरह की न्यायिक हिंसा ही हुआ करती थी। रोमन समय में यूरोपीय समाज में कानूनों के बारे में काफी पुस्तकें लिखी गयीं। इन्हीं कानूनों को बाद में लागू भी किया गया। लेकिन इन कानूनों से सामाजिक परिस्थितियां में कोई खास सुधार नहीं आया, बल्कि परिस्थिति और भी बिगड़ी। लेकिन इन कानूनों का महत्त्व लगातार बढ़ाया गया और इन्हीं कानूनों के पालन को राष्ट्रीय सम्मान के साथ जोड़ दिया गया। इन्हीं कानूनों को रोमन संस्कृति का एक अभिन्न अंग माना गया। इन्हीं कानूनों के आधार पर तरह–तरह के अत्याचार समाज में होने लगे, तो एक तरह से लोगों को कानूनी हिंसा का शिकार होते रहना पड़ा। कानून इस तरह से बनाये गये जो हमेशा ताकतवर का पक्ष लें, क्योंकि द्वारा ही बनाये गये। इन्हीं कानूनों के आधार पर एक नये तरीके की ब्लैकमेलिंग, धोखाधड़ी भी शुरू हुई। इन्हीं कानूनों के आधार पर झूठे आरोप–प्रत्यारोप करने का सिलसिला चल पड़ा। इन्हीं कानूनों के आधार पर झूठे मामलों में एक–दूसरे को फँसाने का सिलसिला शुरू हुआ। यदि कोई जमींदार किसी राजा या सम्राट का काफी करीबी हो, तो वह अपने प्रतिद्वन्दी दूसरे जमीदार को चाहे जब ही राजद्रोह के मामले में फँसा सकता था, या

किसी अन्य मामले में फँसाकर राजा की मदद से उस दूसरे जमींदार की सम्पत्ति हड़प सकता था। इन्हीं कानूनों के आधार पर हत्या भी करायी जाती थी और जेल भी भिजवाया जाता था। इन्हीं कानूनों के आधार पर षड्यन्त्र भी रचे जाते थे और उन षड्यन्त्रों का शिकार कोई भी हो सकता था। इन्हीं कानूनों के आधार पर किस तरह के षड्यन्त्र हुआ करते थे, एक उदाहरण यह है – मान लीजिये कि कोई बड़ा व्यक्ति (धनवान, जमींदार) मर गया। यदि उसका कोई दुश्मन चाहे तो कानून के आधार पर राजा के साथ मिलकर यह आरोप लगा दे कि वह अपनी स्वाभाविक मौत नहीं मरा है बल्कि उसे जहर दिया गया है या उसने आत्महत्या की है तो फिर उस मृत जमींदार की सम्पत्ति को राजा ले सकता था और आरोप लगाने वाले को उस सम्पत्ति के कुछ हिस्से का मालिक बनाया जा सकता था। कानून इसी तरह के होते थे। इसी तरह की जमींदारों की तथा अन्य लोगों की सम्पत्ति हड़पने के लिये ही राजकोष बनाये जाते थे, जो बाद में चलकर टैक्स एकत्रित करने वाले तन्त्र भी बन गये। कानूनों के द्वारा राजा या सम्राट को सारे अधिकार दिये गये थे। प्रजा का कोई भी अधिकार नहीं होता था। सबसे अधिक अधिकार सम्राट को, फिर उससे कम अधिकार उस सम्राट के अधिकरियों एवं गवर्नरां को, फिर उससे कम अधिकार सीनेटर या राजनैतिक प्रशासन के प्रतिनिधियों को; इस तरह से नीचे तक अधिकारों का बँटवारा होता था। सबसे नीचे प्रजा को कोई अधिकार नहीं होता था। सम्राट इन्हीं कानूनों के आधार पर पूरे साम्राज्य की सम्पत्ति का मालिक हुआ करता था। सम्राट किसी की सम्पत्ति को राजकीय सम्पत्ति घोषित कर सकता था, जो प्रकारान्तर से सम्राट की ही सम्पत्ति हुआ करती थी, और यह कानूनों के आधार पर ही होता था। सम्राट किसी के द्वारा दी गयी सूचना के आधार पर भी किसी की सम्पत्ति हड़पने का आदेश राजकोषीय अधिकारियों दे सकता था, जो उस सम्पत्ति को हड़पने के लिये अधिकृत हुआ करते थे। अक्सर जमींदार अपनी सम्पत्ति को बचाने के लिये सम्राट को भी अपनी सम्पत्ति या व्यापार में भागीदार बनाकर रखते थे। लेकिन कई बार सम्राट उस जमींदार की सम्पत्ति का ही मालिक बन जाता था और कानून भी इसमें मदद करते थे। इन कानूनों के बाद भी और कानून बनने के पूर्व भी समाज में कोई भी अपने को और अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित नहीं महसूस करता था। उदाहरण के लिये किसी नये विवाहित व्यक्ति के घर से दहेज का सामान लूटने के लिये पूर्व में चोर–लुटेरे आते थे तो कानून बनने के बाद उसी दहेज सम्पत्ति को राजकोषीय अधिकारी भी लूटकर ले जाते थे। इसलिये कानूनों के बन जाने से समाज को कोई लाभ नहीं हुआ। स्थिति पहले से बदतर ही हुई। यूरोपीय समाज में यह मान्यता धीरे–धीरे बन गयी कि कानूनों के आधार पर कुछ भी हो सकता है। सम्राट के आदेश और कानूनों के आधार पर किसी भी प्राकृतिक सम्पत्ति का दोहन करने का अधिकार मिल जाता था। कानून सिर्फ इतना ही कहता था कि इस दोहन में से सम्राट और राजकोष को भी एक हिस्सा जाना चाहिए, जिसे रायल्टी कहा जाता था। अर्थात् जो भी व्यक्ति या परिवार राजा को एवं राजकोष को रायल्टी देने को तैयार हो, वह उस राजा के अधीन साम्राज्य की किसी भी प्राकृतिक सम्पत्ति के दोहन का अधिकारी हो जाता था। इस बात को कभी भी नहीं देखा जाता था कि दोहन करने वाला व्यक्ति/परिवार इस कार्य के लिये जरूरी ज्ञान रखता है या नहीं? सामान्य रूप से यह होता था कि एक ही परिवार में शामिल होता था। उदाहरण के लिये एक ही परिवार के नियन्त्रण में चल–अचल सम्पत्ति की खरीद–बेच का धन्धा, जहाजों के द्वारा

माल लाने ले जाने का कार्य, कपड़े आदि का उत्पादन, बड़े–बड़े बगीचों में फल उत्पादन, मछली आदि पकड़ने बेचने का व्यवसाय, यातायात–परिवहन आदि का कार्य, वस्तुओं की खरीद बिक्री की दुकानें आदि–आदि रहते थे।

किसी जमींदार की जमीन कई गाँवां या शहरों में हो सकती थीं। यह जरूरी नहीं होता था कि उसकी जमीन किसी एक ही गाँव या शहर तक सीमित रहे। किसी भी जमींदार की कुल जमीन का पता उसके एकाउण्ट बुक से लग सकता था। अलग–अलग जमीनों के अलग–अलग एकाउण्ट भी हो सकते थे। एकाउण्ट बुक से ही पता चलता था कि जमींदार टैक्स देता है या नहीं, जमीन से कितना उत्पादन होता है, कितने की बिक्री होती है, कितना उत्पादन खराब हो जाता है? अचल सम्पत्ति में कृषि योग्य भूमि, बंजर–ऊसर भूमि, इमारतें, घर आदि सभी शामिल माने जाते थे। यह अचल सम्पत्ति किसी भी तरह के व्यापार में प्रमुख सहयोग करती थी, या यह कहा जा सकता है कि यह अचल सम्पत्ति ही किसी भी तरह के व्यापार का आधार हुआ करती थी। जमींदारों के पास जो गैर कृषि योग्य भूमि होती थी, उस पर वे घर बनाकर किराये पर उठाते थे, अन्य इमारतें बनाकर भी उनका व्यापारिक कार्यों में उपयोग होता था। समुद्र के किनारे की भूमि पर बन्दरगाह तथा गोदाम आदि बनाये जाते थे और उनका व्यापारिक उपयोग होता था। शहरों की भूमि पर वेश्यालय, दुकानें, मनोरंजन के लिये काम आने

का भण्डार मिल जाता था, तो फिर उस भूमिका का उपयोग उन खनिजां के दोहन के लिये होने लगता था। ऊसर–बंजर भूमि की मिट्टी का उपयोग ईंट बनाने के लिये भी होता था, और मिट्टी के बरतन आदि बनाने के लिये भी होता था। लेकिन इन सभी कार्यों पर नियन्त्रण जमींदार का ही होता था। कारीगरी का कार्य करने वाले लोगों के लिये कच्चा माल उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी मालिक (जमींदार) की ही होती थी। कई बार खेतिहर मजदूर भी आफ सीजन में कारीगरी का काम किया करते थे। लेकिन ये सभी कारीगर अपने मालिकों के आदेश पर ही कुछ भी बनाने का काम करते थे। ये कारीगर लोग अपने मन से कुछ भी नहीं कर सकते थे, इसकी इजाजत उन्हं नहीं होती थी।

कृषि उत्पादन ही प्राथमिक उत्पादन हुआ करता था, जिसके आधार पर अन्य उत्पादन होते थे। पूरे यूरोप की भूमि पर कृषि–उत्पन्न होता बहुत कम था, क्योंकि भूमि बहुत अच्छे उत्पादन लायक नहीं थी। पूरे यूरोप की भूमि काफी अधिक कठोर रही है। मौसम और वातावरण की प्रतिकूलता इसका मुख्य कारण रहा है। अत्यधिक ठंड वाले स्थानों पर जहाँ साल के अधिकांश महीनों में बर्फ पड़ती हो, वातावरण का तापमान शून्य से 40 डिग्री तक नीचे रहता हो, वहाँ की भूमि का कठोर होना स्वाभाविक ही है। इसलिये पूरे यूरोप में कृषि उत्पादन बहुत कम ही रहता था। आज जो उत्पादन यूरोप में होता है कृषि क्षेत्र में, उसकी तुलना में बहुत ही कम उत्पादन रोमन समय में हुआ करता था। खेती का उत्पादन कम होने के कारण बहुत ही कम लोग इस कृषि तन्त्र पर जीवित रहते थे। दूसरा, यूरोप की पूरी कृषि भूमि बहुत ही थोड़े से परिवारां के नियन्त्रण में रही, इस कारण और भी कम लोग इस कृषि के तन्त्र पर निर्भर रहते थे। यूरोप की अधिकांश प्रजा को गुलाम रहकर मेहनत मजदूरी और कारीगरी का काम करके ही अपनी जीविका चलानी पड़ती थी। जो भी खेतिहर मजदूर अपने हाथों से कृषि कार्य करते थे, उन्हें उतना ही मेहनताना मिलता था, जितने में 2 या 3 लोगों का

ही पेट भर सके। यूरोप में यह मान्यता रही कि मजदूरों को उतना ही वेतन या मेहनताना मिलना चाहिए जो उनके जिन्दा रहने के लिये जरूरी हो। किसी खेतिहर मजदूर के पूरे परिवार को ही काम करना पड़ता था, खुद को जिन्दा रखने के लिये। लेकिन जितना भी उत्पादन होता के लिये काफी होता था, जिसे बेचकर सभी जमींदार अय्याशी का जीवन जी सकते थे। इसी कृषि उत्पादन के आधार पर ये जमींदार बड़ी–बड़ी इमारतें बनाया करते थे, स्मारकों का निर्माण किया करते थे, मनोरंजन आदि पर खर्चा किया करते थे। कृषि उत्पादों को के साथ बदला जाता था। यूरोप में काफी लम्बे समय तक वस्तुओं की अदला–बदली कृषि उत्पादों के साथ होती रही। यूरोप में जमीन ही सबसे बड़ी सम्पत्ति मानी जाती थी। जिसके पास अपनी जमीन हो, उसे समृद्धिशाली अपने आप मान लिया जाता था। सभी तरह के व्यापार का स्त्रोत भूमि (जमीन) को ही माना जाता था। जमींदार, कृषि उत्पन्न का भाव ऊपर–नीचे किया जाता था। अक्सर कृषि वस्तुओं का भण्डारण गोदामों में करके दाम बढ़ाये जाते थे। कभी खराब मौसम और खराब फसल होने के कारण कृषि उत्पादों के दाम बहुत अधिक बढ़ा दिये जाते थे। जब अकाल का समय होता था तब तो कृषि उत्पादां के दाम आसमान छूते थे। व्यापारियों और जमींदारों को अक्सर ही अकाल का इंतजार रहता था, जिससे कि उन्हं अतिरिक्त धन कमाने और सम्पत्ति बनाने का मौका मिले। रोमन समय में यूरोप के कुछ हिस्सों में जो कृषि उत्पादन होता था, वह निर्यात के लिये जाता था। यूरोप में मुख्य रुप से गेहूँ, शराब और तेल को कृषि उत्पाद माना जाता था। इन्हीं तीनों – गेहूँ, शराब और तेल का उत्पादन ही, पूरे यूरोप में अधिक होता था। कभी–कभी जब व्यापार और बाजार चौपट हो जाता था, तो जमींदारों और व्यापारियों को अपनी घरेलू सम्पत्ति पर ही भरोसा होता था। सभी जमींदार अपनी भूमि पर अधिकांश रूप से अंगूर की फसल एवं गेहूँ की फसल ही ज्यादा कराते थे। ये दोनां ही काफी महँगी फसलें मानी जाती थीं । अंगूर से शराबें बनती थीं और गेहूँ का इस्तेमाल बेकरी में खाने पीने की वस्तुयें बनाने में किया जाता था। सभी जमींदार गेहूँ और अंगूर के अलावा अपनी कुछ जमीन पर फलों के वृक्ष भी लगाते थे। फलों के वृक्ष लगाना सबसे अधिक सुरक्षित माना जाता था, क्योंकि फलदार वृक्षों का बगीचा लगाना कोई बहुत अधिक खर्चे का कार्य नहीं होता था। कई जमींदार मछलीपालन का भी व्यवसाय करते थे। वे अपनी जमीनों पर बड़े–बड़े तालाब बनाकर रखते थे। मछलीपालन की तरह ही मुर्गीपालन का कार्य किया जाता था। खाने के लिये मांस उत्पादन हेतु जानवरां के पालने का कार्य भी कृषि कार्य माना जाता था। जमींदारों के पास जानवरों के बाड़े भी हुआ करते थे, जिनमें मांस के लिये जानवरों को पाला जाता था।

प्रत्येक अभिजात्यवर्गीय जमींदार का एक प्रमुख उद्‌देश्य जीवन का यह होता कि अपनी विरासत में मिली हुई सम्पत्ति में अधिक से अधिक बढ़ोत्तरी करना। सम्पत्ति में वृद्धि करने के उद्‌देश्य से ही सभी आर्थिक,राजनैतिक कार्य किये जाते थे। अपनी पैतृक सम्पत्ति में बढ़ोत्तरी करना सबसे बड़ा गुण माना जाता था। प्रत्येक पिता अपने वारिसदार बेटे को सम्पत्ति बढ़ाने के नये–नये तरीके सिखाता था। व्यापार करने के और लाभ कमाने के तरीके भी सिखाये जाते थे। खर्चा करने के ऐसे तरीके सीखे और सिखाये जाते थे, जिससे सम्पत्ति में कोई कमी नहीं आने पाये। जो पैसा व्यापार को और अधिक बढ़ाने में लगे, उसे जरूरी खर्चा माना जाता था और जो खर्चा पेंटिंग, घर को सजाने आदि में किया जाता था, उसे गैर जरूरी माना जाता था।

लेकिन शानो–शौकत को बढ़ाने के लिये घरों को सजाने सँवारने का खर्च किया भी जाता था। में ही किया जाता था। प्रत्येक पूँजी निवेश के साथ इस बात का पूरा हिसाब–किताब कर लिया जाता था कि उससे नुकसान नहीं होना चाहिए। लेकिन कई बार नुकसान भी होता ही था, लगी हुई पूँजी किसी व्यापार में डूब जाया करती थी। अक्सर पूँजी डूब जाने पर सलाहकारों की मदद ली जाती थी। कई जमींदार तो अपना पूँजी निवेश करने के बारे में सलाह देने के लिये सलाहकारों को रखते थे। कुछ सलाहकार कानूनी होते थे, तो कुछ सलाहकार आर्थिक होते थे। हालाँकि पूँजी निवेश करने का अन्तिम फैसला वही करता था, जो सम्पत्ति (पूँजी) का कानूनी मालिक होता था। प्रत्येक व्यापारी और जमींदार के सलाहकार हुआ करते थे, लेकिन फैसले नहीं ले सकते थे। इन सलाहकारों को की ओरसे कुछ मेहनताना एवं समय–समय पर कुछ उपहार मिल जाया करते थे। लेकिन ये सलाहकार अपने मालिक की सम्पत्ति में से कुछ भी अपने मन से नहीं ले सकते थे। हरेक जमींदार या व्यापारी के कुछ संरक्षक भी हुआ करते थे, जो काफी प्रभावशाली लोग होते थे। लेकिन ये संरक्षक भी प्रतीकात्मक अधिक होते थे। फैसले लेने का अधिकार इन संरक्षकों को भी नहीं होता था। इन संरक्षकों की जिम्मेदारी कई बार माल बिकवाने और सुरक्षित पूंजी की जिम्मेदारी यह भी होती कि वे समय पर अपने को अचल सम्पत्ति (ईमारतें आदि) सोना आदि खरीदने में मदद करें। ये संरक्षक समय के अनुसार बदलते रहते थे, कभी भी स्थायी नहीं होते थे। कुछ जमींदार परिवारां के संरक्षक एक पीढ़ी या दो पीढ़ियों तक भी चला करते थे। जमींदार परिवारां के मुख्य व्यक्ति ही सभी फैसले करने के अधिकारी होते थे। परिवार का मुखिया (पिता या पति) ही सम्पत्ति, पूँजी निवेश आदि के बारे में सभी फैसले किया करता था। पति का अपनी पत्नी के मायके से आये हुए दहेज के सामान और सम्पत्ति पर भी पूरा अधिकार होता था। लेकिन तलाक हो जाने पर पत्नी का अधिकार वापस अपने मायके से दहेज में लायी हुई सम्पत्ति पर हो जाता था। तलाक होने पर पत्नी को अपने मायके की सम्पत्ति अपने पति से वापस लेने का अधिकार बनता था। कई बार तलाक होने के बाद पत्नी को दहेज की सम्पत्ति में कुछ बढ़ोत्तरी होकर भी मिल जाता था। यह बढ़ोत्तरी इसलिये की जाती थी कि ब्याज उसमें जुड़ जाया करता था। जमीन के अन्दर से मार्बल पत्थर निकालकर, उनको बाजार में बेचने का कार्य भी जमींदार किया करते थे। उस जमाने में भी खदानं होती थीं, जिनमें से ऐसा बहुत कुछ निकलता था, जो व्यापार के लायक होता था। पूरे यूरोप में यह मान्यता थी कि खदानों में मार्बल ऐसे ही बढ़ती रहती है जैसे पेड़ों पर फल बढ़ते रहते हैं। इसी तरह की मान्यता सोने के बारे में थी कि लगातार सोने को बढ़ते रहना चाहिए, जैसे कि पेड़ बढ़ते हैं, पेड़ों पर लगे हुए फल बढ़ते रहते हैं। सभी रोमन कानून एवं खनन के बारे में इसी मान्यता के अनुरूप बनाये गये। खदानों से सल्फर (गंधक), चाँदी, लौह अयस्क आदि के खनन का कार्य भी रोमन समय में होता था। जो जमींदार जितना अधिक खनन करा सकता था, वह उतना ही अच्छा अपनी स्टेट का प्रशासक और व्यापारी माना जाता था। उस जमाने में कपड़ों को धोने के लिये चाक पाउडर जैसा चूरा खदानों से निकाला जाता था। इस चूरे से ही कपड़ों को धोने का कार्य होता था। कई जमींदारों के पास यह कपड़ा धोने का पाउडर निकालने वाली खदानें हुआ करती थीं। इसी तरह कपड़ों को चमक देने के लिये (जैसे आज के समय में स्टार्च लगाया जाता है) खदानों से एक विशेष किस्म का चूरा

(पाउडर) निकाला जाता था। पूरे यूरोप में जैतून के बड़े–बड़े बागान होते थे और जैतून के तेल का काफी व्यवसाय हुआ करता था। अधिकांश बागानों में या तो अंगूर की बेलें हुआ करती थीं या फिर जैतून के वृक्ष। बहुत कम ऐसे भी अपवादस्वरूप जमींदार हुआ करते थे, जो मानते थे कि प्राकृतिक संसाधनों के स्त्रोत निरंतर चलने चाहिए और जल्द ही एक या दो पीढ़ियों में समाप्त नहीं होने चाहिए। लेकिन ऐसी सोच रखने वाले जमींदार एवं संरक्षक अपवादस्वरूप ही हुआ करते थे। सामान्य रूप से पूरे यूरोप में अधिक से अधिक लाभ कमाने का पूँजीवादी तत्व ही चलन में रहता रहा। यूरोप में यह मान्यता रही कि सम्पत्ति में वृद्धि करके एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरण करते रहना ही चाहिए। प्रत्येक पीढ़ी अपने से पूर्व पीढ़ी की सम्पत्ति

एवं कम्पनियों का

उद्देश्य भी तो यही है कि लगातार कम्पनी की सम्पत्ति में बढ़ोत्तरी करना। पीढ़ी दर पीढ़ी सम्पत्ति को और कम्पनी के व्यापार को बढ़ाते चला जाना। यूरोप में यह मान्यता रही कि राजनीति का एक मात्र उद्देश्य सम्पत्ति को बढ़ाते जाना ही है। आज के समय में जिस तरह से बड़ी–बड़ी कम्पनियों को चलाया जाता है, उन्हीं तौर–तरीकों से कमोबेश रोमन समय में जमींदारी को चलाया जाता था। लगभग इन्हीं तौर–तरीकों से राज्य को भी चलाया जाता था। राज्य को चलाने के तरीके भी लगभग वही हुआ करते थे, जो जमींदारी चलाने के होते थे। आज के समय के आधुनिक राज्य भी लगभग उन्हीं तरीकों से चलाये जा रहे हैं, जिन तरीकों से पुराने यूरोपीय समय और रोमन समय में चलाये जाते थे। रोमन साम्राज्य सिर्फ किसानां, खेतिहर मजदूरों का ही था, यह शास्त्रीय दावा गलत है। रोमन साम्राज्य में जमींदार, अभिजात्य व्यापारी, गुलाम कृषि मजदूर, कारीगर, राजनीतिक नेताओं, अधिकारी वर्ग आदि सभी के प्रतिनिधि होते थे। लेकिन यह बात बहुत महत्त वपूर्ण है कि रोमन समय में समाज के हर व्यक्ति का आखिरी उद्देश्य अमीर से और अमीर होते जाने का ही होता था। रोमन समय में, उसके पूर्व तथा आधुनिक समय में एक बात यह एक जैसी ही दिखाई देती है–'आक्रामक तरीकों या किसी भी अन्य तरीके का प्रयोग करके अधिक से अधिक अमीर होते जाना, समृद्धि की ऊँचाईयों पर पहुँचना।' रोमन समय के लोग आर्थिक लाभ के लिये बहुत ही आक्रामक हुआ करते थे। यह बात आज भी यूरोप में दिखायी देती है। प्रत्येक यूरोपीय व्यक्ति की जीवन की सारी जद्दोजहद अमीर, समृद्धिशाली होने में ही निहित होती थी। यूरोप के लोगों की इसी अमीरी की लालसा ने उन्हं अपने समाज से बाहर दूसरे देशों में भी जाकर व्यापार करने के लिये प्रेरित किया। और चूँकि लूटमार को भी यूरोप में व्यापार ही माना जाता था, इसलिये यूरोपीय लोगों ने दुनिया के तमाम देशों में जाकर लूटमार (तथाकथित व्यापार) का कार्य किया। यूरोप में यह मान्यता रही कि किसी भी तरीके से अमीर होना समृद्धिशाली होना जीवन का आखिरी उद्देश्य है, इसीलिये इन यूरोपीय लोगों ने दुनिया के तमाम देशों में जाकर गुलाम बनाना और उनकी

तक किया। पिछले 400–500 वर्षों में इन यूरोपीय

ने अफ्रीका के तमाम देशों एवं भारत सहित एशिया के तमाम देशों में अपना शासन स्थापित करके लूटमार करने का ही कार्य किया। इसी तरह लैटिन अमरीकी देशों को भी इन्हीं यूरोपीय लोगों ने लूटा और गुलाम बनाया। एक आदर्श रोमन व्यक्ति कैसा होता था? एक आदर्श यूरोपीय व्यक्ति कैसा होता था? इसका उत्तर है– "एक स्वतन्त्र पैदा हुआ अभिजात्यवर्गीय व्यक्ति, जिसके पास विरासत में मिली हुई अपार सम्पत्ति हो एवं राजनैतिक सम्बन्ध प्रभावशाली

के साथ हों, आरामतलबी की जिन्दगी बिताता हो, अच्छे–अच्छे कपड़े पहनता हो, गुलाम नौकर–चाकर की फौज उसके पास हो, चापलूसों की फौज उसके आस–पास रहती हो, उसके पास पत्नी के अतिरिक्त कई और महिलायें रखैल के रूप में हों"। ऐसे व्यक्ति को यूरोप में आदर्श माना जाता रहा। ऐसे आदर्श व्यक्ति के मरने के बाद जो स्मारक उसकी याद में बनाया जाता था, उस स्मारक पर भी काफी कुछ कलात्मक कार्य किया जाता था। उस स्मारक पर मरने वाले की जीवन कहानी भी उकेरी जाती थी। इस कार्य के लिये विशेष किस्म के कारीगर हुआ करते थे। मृत्यु स्मारक के ऊपर धन, सम्पत्ति का वर्णन भी किया जाता था। मरने वाले के सभी एकाउण्टस भी स्मारक पर लिख दिये जाते थे। मृत्यु स्मारक पर कर्जदारों के नाम व उनको कर्जे के रूप में दी गयी रकम भी लिखी जाती थी। दिवंगत व्यक्ति के कितने गुलाम, नौकर, प्रबन्धक आदि रहे, उनकी जानकारी भी मृत्यू स्मारक पर दी जाती थी। दिवंगत व्यक्ति की कितनी जमीन, कितने खेतिहर मजदूर, कितने बाग–बगीचे आदि रहे, उसकी पूरी जानकारी उस मृत्यु स्मारक पर खुदवाई जाती थी।

यदि मृत्यु स्मारक किसी अभिजात्यवर्गीय महिला का होता था, तो उस महिला की मूर्ति पत्थर पर बनाई जाती थी। जैसे कि वह महिला एक ऊँची कुर्सी पर पैर पसारे बैठी हुई है। उसके सामने शीशा लेकर एक दासी खड़ी हुई है और वह अभिजातीय महिला कुछ सोने के आभूषण अपने हाथों से गले आदि में पहन रही है। कभी–कभी मृत्यु स्मारक पर इस तरह की तस्वीर भी उकेरी जाती थी कि अभिजात्यवर्गीय महिला के ऊपर छतरी ताने हुए कोई दासी खड़ी है। कभी–कभी इस तरह का चित्रण भी मृत्यु स्मारकों पर हुआ करता था, जैसे–कोई अभिजातीय महिला सज–धजकर अपने दोनां हाथों को वीनस नाम की देवी (जो विवाह की प्रतीक मानी जाती थी) के लिये श्रद्धांजलि स्वरूप उठाये हुए है।

कई बहादुर किस्म के सेनाधिकारी या उच्चवर्गीय लोगों के मृत्यु स्मारक कुछ इस तरीके के होते थे कि वह बहादुर सेनापति एक हाथ को अपनी पत्नी के हाथ में डाले हुए है, तो दूसरे हाथ से किसी का समर्पण स्वीकार कर रहा है। यूरोप में अक्सर जमींदारों में युद्ध होते रहते थे। इन जमींदारों की अपनी निजी सेनायें हुआ करती थीं। इन्हीं सेनाओं के सेनापति जब दूसरी सेना से लड़ते थे, तो कोई तो पराजित होता था। और जो भी पराजित होता था, वह विजेता के सामने समर्पण करता था। तो समर्पण के समय का दृश्य सेनापतियों के मृत्यु स्मारकों पर खुदवाया जाता था। कभी–कभी किसी बहुत अमीर व्यक्ति के मृत्यु स्मारक पर यह दृश्य खुदवाया जाता था कि वह अपने गुलामों, नौकर–चाकरों को धन बाँट रहा है, और मनोरंजन का कार्य करने वाले कलाकारों को भी कुछ उपहार या धन दे रहा है। जैसे–अक्सर ही लोगों के मनोरंजन के लिये तलवारबाजी का खेल दिखाने वाले या नाटक–नौटंकी करने वाले कलाकारों को धन बाँटते हुए अमीर व्यक्ति को मृत्यु स्मार पर दिखाया जाता था। यह धन बाँटते हुए उसी अमीर व्यक्ति को दिखाया जाता था, जिसकी मृत्यु हुई हो। जिस व्यक्ति के मृत्यु स्मारक पर जितने अधिक नौकर–चाकरों के चेहरे उकेरे जाते थे, वह मरने वाला व्यक्ति उतना ही प्रतिष्ठित माना जाता था। रोमन समय में कोई भी दण्डसंहिता (अपराधों के लिये कानून) या दण्डविधान नहीं रहा, इसलिये जो भी समाज के ताकतवर लोग अपनी ताकत का प्रयोग करके करें, वही सही माना जाता था।

प्रत्येक मृत्यु स्मारक के दो हिस्से हुआ करते थे। एक हिस्सा बायीं ओर का, दूसरा हिस्सा दाहिनी ओर का। बायीं ओर के हिस्से में वह सभी दिखाया जाता था, जो मरने वाले व्यक्ति के पेशे से सम्बन्धित होता था। उदाहरण के लिये यदि मरने वाला कोई चिकित्सक है तो मृत्यु स्मारक के बायीं ओर उसे मरीजों को दखते हुए या मरीजों से बातें करते हुए दिखाया जाता था। दाहिनी ओर के मृत्यु स्मारक पर उस मरने वाले का परिवार दिखाया जाता था। इस परिवार में उस मरने व्यक्ति की पत्नी, बच्चे, नौकर–चाकर, दास–दासियाँ, गुलाम, कुत्ते–बिल्ली–घोड़े आदि जानवर, गाय–बैल आदि सभी दिखाये जाते थे। परिवार में ये सभी शामिल होते थे। कई मृत्यु स्मारकों पर मरने वाले व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं का भी वर्णन किया जाता था। जैसे–मरने वाला व्यक्ति दयालु था या कठोर, झूठ बोलता था या सच, धार्मिक था या अधर्मी, देवी–देवताओं को मानता था या नहीं, व्यवहारशील था या गाली–गलौज करने वाला, सत्य बोलता था या झूठ–आदि–आदि चारित्रिक विशेषतायें मानी जाती थीं। कई बार मृत्यु स्मारकों पर किसी व्यक्ति को दर्शनशास्त्र आदि की पुस्तकें पढ़ते हूए भी दिखाया जाता था।

रोमन समाज और उसके पूर्व का भी समाज कहीं से भी समतावादी या समानतावादी नहीं था। हमेशा लोगों को इस बात का अहसास होता रहता था कि वे एक–दूसरे से अलग वर्ग के हैं। समाज में दो वर्ग बहुत स्पष्ट होते थे, एक तो अभिजात्यीय शासक वर्ग, दूसरा गुलाम शासित वर्ग। इन गुलामों के बीच में भी वर्गीकरण हुआ करता था। जैसे–गुलाम खेतिहर मजदूर एवं नौकर–चाकरों का एक वर्ग, इसी तरह से गुलाम कारीगरों का एक वर्ग, इसी तरह मनोरंजन का कार्य करने वाले गुलाम कलाकारों का एक वर्ग, इसी तरह गुलाम लेकिन किसी के प्रबन्धक, सुपरवाइजर आदि के रूप में काम करने वालों का वर्ग आदि–आदि। इसी तरह अभिजातीय वर्ग में सबसे ऊपर सम्राट या राजा, उसके नीचे उसके राज्य को चलाने वाले अधिकारी कर्मचारी, सीनेटर आदि। फिर अभिजात वर्ग के जमींदार, अमीर समृद्धिशाली लोग आदि–आदि। हमेशा समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों को अलग–अलग तरीकों से यह अहसास कराया जाता था कि वे दूसरों के जैसे समान वर्ग से नहीं हैं, वे अलग वर्ग से हैं। एक वर्ग से दूसरे वर्ग का अन्तर बिल्कुल साफ–साफ दैनिक जीवन में नजर आता था। दैनिक जीवन के क्रम को देखकर ही यह अन्तर स्पष्ट पहचाना जाता था। आपसी बोलचाल, व्यवहार, पहनावा, खान–पान आदि में यह अन्तर स्पष्ट दिखायी देता रहता था। काम करने के तरीकों में भी अन्तर स्पष्ट दिखायी देता था। इस अन्तर को बनाये रखने की और अन्तर को लगातार बढ़ाने की कोशिश हमेशा ही चलती रहती थी। गुलाम वर्ग के लोगों के साथ अभिजातीय वर्ग के लोग बहुत ही बदतमीजी

के बीच का अन्तर बना रहे। गुलाम वर्ग के लोगों को अच्छे कपड़े पहनने की और खासकर मालिक जैसे कपड़े पहनने की इजाजत नहीं होती थी। इसी तरह गुलाम वर्ग के लोगों का खाना–पीना, मालिक वर्ग की तुलना बहुत ही निम्न स्तर का होता था। सड़क पर चलते हुए भी मालिक वर्ग और गुलाम वर्ग के लोगों का अन्तर स्पष्ट दिखायी देता था। कोई भी मालिक वर्ग का व्यक्ति जब भी घर से बाहर निकलता था, तो बिना सेवकों और अनुचरों के नहीं निकलता था। प्रत्येक मालिक अपने अनुचरों एवं सेवकों के सामने अपने बारे में ऐसी बातें सुनाया करता था, जिससे उसका स्तर हमेशा ऊँचा ही रहे। उदाहरण के लिये समाज के ताकतवर, राजनैतिक प्रभाव वाले लोगों के साथ

अपने सम्बन्धों के किस्से अनुचरों एवं सेवकां को सुनाना। इसी तरह यदि उस मालिक ने समाज के प्रभावशाली लोगों के साथ कभी भोजन (डिनर आदि) किया हो तो, उसका बखान अपने अनुचरों एवं सेवकां के सामने करना। यूरोप के इस अभिजातीय वर्ग में कभी भी सादगी, शालीनता, विनम्रता, दया, करुणा आदि गुणों को, नहीं देखा गया न तो रोमन समय में और न ही रोमन समय से पूर्व समय में। आज भी यूरोप के अभिजातीय वर्ग में ये गुण जल्दी देखने को नहीं मिलते हैं। यूरोपीय समाज के अभिजात्य वर्ग का प्रत्येक हाव–भाव इस बात के लिये अधिक होता था कि यह अभिजात्य वर्ग अन्य गुलाम वर्ग से अलग दिखे।

यूरोप में रोम को कानूनों की जननी माना जाता रहा है। रोम की सरकारों को हमेशा कानूनी सरकार माना जाता था। ऐसा माना जाता था कि रोम में ऐसा कुछ भी नहीं होता है जो कानून आधारित नहीं हो। लेकिन महत्त्व की बात यह जानने की है कि लगभग सभी रोमन कानून व्यक्तिवादी ही हुआ करते थे। रोमन कानूनों के व्यक्तिपरक होने की वजह यूरोपीय मान्यतायें ही रहीं, जिनमें व्यक्ति को ही महत्त्व दिया जाता था। रोमन कानूनों के अनुसार स्त्री पुरुष दोनां को ही तलाक देने एवं लेने की आजादी थी। रोमन कानूनों के आधार पर सम्पत्ति का हस्तान्तरण भी हुआ करता था। वसीयत करने के कानून भी वसीयत करने वालों को काफी आजादी देते थे। किसी के ऊपर धार्मिक विश्वास थोपा नहीं जा सकता था, इस तरह के कानून हुआ करते थे। प्रत्येक शहर और कस्बे के अपने–अपने देवी–देवता हुआ करते थे। इसी तरह प्रत्येक परिवार के भी अपने–अपने देवी–देवता हुआ करते थे। कानून इसकी इजाजत देते थे कि प्रत्येक परिवार और प्रत्येक शहर/गाँव अपने देवी–देवताओं को चुन सकते थे। इसी को यूरोप में सेक्यूलरिज्म कहा जाता था। सेक्यूलरिज्म का अर्थ था अपने–अपने देवी–देवताओं को चुनने की आजादी। अपने–अपने देवी–देवताओं को सम्मान देने का सबसे अच्छा तरीका माना जाता था–काम पर नहीं जाना या छुट्टी कर लेना। अपने निवास स्थानां को बदलना और काम को बदलना, यदि कोई चाहे तो उसके लिये भी कानून हुआ करते थे। यदि कोई व्यक्ति/परिवार किसी दूसरे के देवी–देवताओं का अपमान करे, तो इसके लिये माना जाता था कि वे देवी–देवता ही अपने अपमान का बदला ले लेंगे (यदि उनमें क्षमता होगी तो)। सेक्सजनित अपराधों के लिये भी कानून हुआ करते थे, भले ही वे अपराध किसी स्त्री या पुरुष द्वारा किये गये हों। ऐसे ही कानूनों का बनाया जाना उदारीकरण कहलाता था। यह उदारीकरण यूरोप की अभिजात्यवर्गीय निजी (प्राइवेट) जीवनशैली का ही परिणाम माना जाता था। ये सभी कानून भी यूरोपीय अभिजातवर्गीय निजी जिन्दगी की जीवनशैली में से ही निकले थे। ये सभी कानून यूरोप के अभिजात्यवर्गीय परिवारां की सामाजिक हैसियत, उनकी सम्पत्ति, उन परिवारां के प्रति गुलामों एवं अनुचरों की स्वामिभक्ति आदि–आदि का ही सार्वजनिक निरूपण या रूपान्तरण कहे जाते थे। यूरोपीय समाज के शासक वर्ग जो कुछ भी प्राईवेट जीवन में किया करते थे, उन्हीं को कानून बनाकर सार्वजनिक जीवन के लिये तय कर दिया गया। निजी (प्राईवेट) किसे माना जाता था – कोई भी व्यक्ति सार्वजनिक पदों पर रहते हुए अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए, व्यक्तिगत रूप से जो कुछ भी करता था, उसे प्राइवेट माना जाता था। जमींदारों के परिवारां के लिये जिस तरह के नियम (लिखित या अलिखित) होते थे, उन्हीं को सार्वजनिक जीवन के लिये कानून बना दिया गया।

इन कानूनों के अतिरिक्त कुछ नैतिकता (morality) की बातें भी सम्राटां द्वारा समाज के सामने समय–समय पर लायी जाती थीं। इन सम्राटां को अपनी समझ के अनुसार जो नैतिक लगता था, वही समाज पर थोप दिया जाता था, और बाद में यही कानून बन जाता था। माना यह जाता था कि व्यभिचार से सम्बन्धित कानून इसी नैतिकता को आधार बनाकर बनाये गये थे। औरतों द्वारा किये गये व्यभिचार के कानून बहुत अधिक कड़क थे। पुरुषों द्वारा किये गये व्यभिचार के कानून बहुत सरल एवं आसान हुआ करते थे। अपनी शुचिता को छोड़ देने वाली किसी महिला या व्यभिचार में पकड़ी जाने वाली महिला को जिन्दा जला देने के कानून हुआ करते थे, और ये जिन्दा जला देने के कानून नैतिकता में से ही निकले थे। यदि कोई पुरुष व्यभिचार में पकड़ा जाये तो हरजाना देकर छूट जाया करता था, इस तरह के कानून थे। कभी–कभी किसी पुरुष को उस महिला से विवाह करना पड़ जाता था, जिसके साथ वह व्यभिचार किया करता था। गर्भपात के विरोध में भी कानून बनाये गये थे ये कानून भी नैतिकता की परिभाषा में से ही निकले थे। गर्भपात और व्यभिचार दोनों को ही अपराध माना जाता था। मान्यता यह थी कि इन कानूनों के माध्यम से क्रांतिकारी परिवर्तन यूरोपीय समाज में आये। यूरोप में यहाँ तक माना जाता था कि शहर या गाँव कोई स्वाभाविक सामाजिक प्रक्रिया से नहीं, बल्कि कानूनों के आधार पर ही बने हैं। यह भी माना जाता था कि यदि कानूनों की मदद से अथवा गाँवों को सुरक्षित नहीं रखा गया तो ये नष्ट हो जायेंगे, अथवा इन शहरां के दुश्मन इन्हें नष्ट कर देंगे। पूरे यूरोप में यह मान्यता बहुत ही प्रबल रही कि साधारण लोग हमेशा ही भ्रष्ट एवं पापी होते हैं, इसलिये इन साधारण लोगों को नैतिकता एवं कानूनों के अनुशासन में रखा जाना बहुत जरूरी माना जाता था। सारी नैतिकता को पालने की अपेक्षा इन्हीं साधारण लोगों से अधिक की जाती थी। सम्राट से या राजा से हमेशा ही यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने राज्य में कानूनों का पालन प्रजा से कराये एवं नैतिकता का आचरण पालन करने के लिये प्रजा को मजबूर करता रहे। इस नैतिकता को प्रस्थापित कराने वाले यूरोप में समय–समय पर कई सम्राट होते रहे और नैतिकता के सिद्धान्तों को बनाने वाले कई दर्शनशास्त्री होते रहे। उदाहरण के लिये काण्टेस्टाइन, ऑगस्टस, डोमीशियेन, सेवेरी, अरस्तू, प्लेटो आदि बहुत ही मशहूर रहे। कई बार नैतिकता के प्रतिमान एक सम्राट से दूसरे सम्राट तक बदलते रहते थे। कभी भी स्थायी नैतिक प्रतिमान नहीं हुआ करते थे। एक सम्राट या राजा जिस आचरण को नैतिक मानता था जरूरी नहीं कि दूसरा सम्राट या राजा भी उस आचरण को नैतिक माने।

सभी सिविल कानून (नागरिक कानून) यूरोप के लोकाचार और लोकव्यवहार को निरूपित किया करते थे। कानून और नैतिकता एक दूसरे के साथ बहुत ही अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे। कई बार ऐसा ही लगता था कि कानून और नैतिकता एक ही सिक्के के दो हिस्से हैं। रोमन कानूनों में शब्दों की प्रमुखता रहा करती थी, विचार की नहीं। अर्थात् कानून शब्द प्रधान अधिक और विचार प्रधान कम होते थे। कानूनों को बनाने और लिखने में शब्दां को प्रधानता एवं प्रमुखता दी जाती थी। शब्दों को इतना अधिक घुमा–घुमाकर प्रयोग किया जाता था कि आसानी से किसी साधारण आदमी को समझ में नहीं आये। विद्वानों को भी काफी मशक्कत इन कानूनों को समझने में करनी पड़ती थी। इन कानूनों में शब्दाडम्बर अधिक होता था। चूँकि साधारण की समझ के बाहर ये कानून हुआ करते थे, इसलिये इन कानूनों के आधार पर साधारण

को न्याय कभी भी नहीं मिल पाता था। न ही साधारण लोग इन कानूनों के आधार पर अपने से अधिक ताकतवर लोगों से लड़ सकते थे। यदि कोई प्रभावशाली एवं ताकतवर व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिये और साधारण लोगों के विरुद्ध इन कानूनों का दुरुपयोग करे या कानूनों का उल्लघंन करे तो भी व्यवस्था और न्याय ताकतवर एवं प्रभावशाली के ही पक्ष में रहता था। कानून किस तरह से और नैतिकता किस तरह से काम करती थी, इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण यूरोपीय समाज में मिल जाया करते थे। मान लीजिये कि किसी एक व्यक्ति ने दूसरे को कर्ज पर धन दिया, लेकिन उस दूसरे व्यक्ति ने कर्ज वापस नहीं दिया, तो पहला व्यक्ति दूसरे को मारपीट करके उससे कर्जा वापस ले सकता था। या, उस दूसरे व्यक्ति को मारपीट कर पहला व्यक्ति अपनी निजी जेल में बंद कर सकता था। यह सब कुछ कानून के आधार पर ही होता था, क्योंकि कानून ही इसी तरह के बने हुए होते थे। एक दूसरा उदाहरण इसी तरह से दिया जा सकता है – मान लीजिये कि किसी एक प्रभावशाली जमींदार ने अपने निजी सैनिकों, नौकर–चाकरों की मदद से किसी दूसरे जमींदार की सम्पत्ति को छीन लिया हो, तो फिर दूसरे जमींदार के पास एक ही कानूनी रास्ता बचता था कि वह पहले जमींदार पर हमला करके अपनी सम्पत्ति को वापस ले ले। यदि दूसरा जमींदार अदालत में भी जाये तो अदालत भी उसे यही आदेश देगी कि वह पहले जमींदार को पकड़कर लाये और अदालत में पेश करे। और अदालत फिर उस पहले जमींदार को दूसरे जमींदार की जेल में भेजने का आदेश करे। यदि अदालत का न्यायाधीश कोई फैसला भी करता था, तो उस फैसले को लागू कराने का कार्य वह पार्टी ही करती थी, जिसके पक्ष में फैसला दिया गया हो। ध्यान रहे कि यूरोप में उन दिनों सार्वजनिक पुलिस की कोई व्यवस्था नहीं हुआ करती थी। यदि अदालत किसी की सम्पत्ति की नीलामी का आदेश देती थी, तो उस व्यक्ति के विरोधी पक्ष को ही नीलामी करानी पड़ती थी। नीलामी हो जाने के पश्चात् जो पैसा मिलता था, वह या तो अदालत में जमा कराना पड़ता था या फिर नीलामी कराने वाला पक्ष ही उस पैसे को रख लेता था। यह भी कानून के आधार पर कोर्ट मे दिये गये फैसले के आधार पर ही होता था। इस तरह के कानून और न्याय पद्धति के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता था कि लोगों को किस तरह का न्याय मिलता रहा होगा? और इस न्याय और कानून की व्यवस्था पर कितने

का भरोसा रहा होगा? जब दो ताकतवर लोगों के बीच विवाद होता था, तभी मामला अदालत में ले जाया जाता था। कमजोर लोग तो कभी सोच भी नहीं सकते थे, किसी मामले को अदालत में ले जाने के लिये। समाज के ताकतवर लोगों की इच्छा के अनुरूप ही अदालतों के फैसले आया करते थे, क्योंकि अदालतां में बैठे हुए न्यायाधीशों के साथ जान–पहचान भी फैसलों का आधार बना करती थी। इन नियम कानूनों में यूरोपीय संस्कृति–सभ्यता का आधार साफ–साफ नजर आता था। उदाहरण के लिये कोई भी महिला बिना किसी पुरुष प्रतिनिधि के साथ किसी मामले को अदालत में नहीं ले जा सकती थी। अर्थात् यदि कोई महिला किसी मामले को अदालत में ले जाना चाहे तो हमेशा किसी पुरुष के साथ ही उसे जाना होता था। यदि कोई महिला रोमन (यूरोपियन) नहीं हो तो, उसे तो अपना कोई मामला अदालत तक ले जाने का अधिकार नहीं होता था। रोमन समय में कई–कई बार ऐसा होता था कि न्याय सड़कों एवं गलियों में हुआ करता था; अर्थात् अदालती फैसले सड़कों पर भी हुआ करते थे। कई बार किसी कर्जदार से कर्जा वापस लेने के लिये उसके घर पर जाकर

घेरा जाता था, उसकी बेइज्जती की जाती थी। उसको शर्मिन्दा करने के लिये कई बातें या गन्दे–गन्दे गाने सुनाये जाते थे। कई बार, उस कर्जदार के कपड़े भी उतारे जाते थे, उसे नंगा भी कर दिया जाता था यह सारा कार्य अदालती न्यायाधीश की देख–रेख में किया जाता था। उस कर्जदार का सामाजिक बहिष्कार भी कराया जाता था; जैसे–नाइयों से कहा जाता था कि वे उस कर्जदार के बाल नहीं बनायें। उस कर्जदार व्यक्ति को कई बार ऐसे कपड़े पहना दिये जाते थे, जो किसी मातमी माहौल में ही पहने जाते थे। वह कर्जदार लोगों के बीच अपनी छवि वापस बनाने के लिये और लोगों की सहानुभूति पाने के लिये कई प्रयास करता रहता था। सार्वजनिक जीवन में लोगों की राय अथवा जनमत का काफी महत्त्व हुआ करता था। प्रत्येक प्रभावशाली व्यक्ति अपनी छवि की चिन्ता रखता था कि लोगों के बीच में उसकी छवि खराब नहीं हो जाये। जिसकी सार्वजनिक छवि खराब हो जाती थी, उसका बहुत मजाक बनाया जाता था। उसकी कई बार शवयात्रा निकाली जाती थी, जिसमें पीछे–पीछे मातम मनाते हुए लोग चला करते थे। ऐसी परिस्थिति में जनता को ही असली न्यायाधीश माना जाता था। प्रत्येक प्रभावशाली व्यक्ति के निजी जीवन में लोकमत (जनमत) का बहुत महत्त्व होता था। कई बार तो मरे हुए व्यक्ति का भी मजाक बनाया जाता था, यदि वह जनमत की अनदेखी करता था
तो। किसी का सार्वजनिक मजाक किया जाय, तो वह उसकी सबसे बड़ी बेइज्जती हुआ करती थी। यदि कोई प्रभावशाली व्यक्ति बहुत ही कंजूसी करता हो, तो उसका भी जनता के बीच में मजाक बनाया जाता था। उदाहरण के लिये यदि जनता के मनोरंजन के लिये तीरंदाजी का मुकाबला आयोजित किया गया हो और मुकाबले की समाप्ति पर तीरंदाजों को कुछ भुगतान करना हो, तो वह भुगतान प्रभावशाली लोग ही किया करते थे। अब कोई प्रभावशाली व्यक्ति तीरंदाजों को भुगतान नहीं करे और उसमें कंजूसी करे तो फिर उस प्रभावशाली व्यक्ति का जनता के बीच में मजाक बनाया जाता था। कई बार ऐसा भी होता था कि ऐसे कंजूस
प्रभावशाली व्यक्ति के मरने पर उसके उत्तराधिकारी से सभी तरह के भुगतान करा लिये जाते थे, तभी उस मरे हुए प्रभावशाली व्यक्ति का शव दफन किया जाता था। समाज के सभी प्रभावशाली लोग अनाधिकार समाज के सभी लोगों के नैतिक ठेकेदार हुआ करते थे। हरेक ऊपर के वर्ग का प्रभावशाली व्यक्ति अपने से नीचे वर्ग के व्यक्ति के लिये नैतिकता का ठेकेदार माना जाता था। सबसे नीचे के वर्ग के लोग अपने नजदीकी लोगों के लिये ही नैतिकता के प्रतिमान माने जाते थे। जैसे, बाप अपने बेटों–बेटियों के लिये और पत्नी के लिये और आस–पास के लोगों के लिये नैतिकता का आदर्श माना जाता था। जो लोग भी नैतिकता के प्रतिमान माने जाते थे, वे एक तरह से समाज में न्यायाधीश की तरह ही कार्य किया करते थे।

यूरोपीय समाज में अधिकांश कब्रिस्तान और समाधि स्मारक शहर के बाहर ही हुआ करते थे। प्रभावशाली लोगों के कब्रिस्तानों और समाधिस्मारकों का प्रचार भी किया जाता था। सड़कों के किनारे–किनारे पैदल चलने वालों के लिये जो रास्ते हुआ करते थे, उन रास्तों के आजू–बाजू प्रचार किया जाता था। रोमन हाईवे (राजपथ) के आस–पास की जमीन चूँकि किसी की नहीं
मानी जाती थी, इसलिये इस जमीनों में समाधि स्मारक बना लिये जाते थे। जैसे ही शहर के दरवाजे के बाहर कोई निकलता था, तो सड़क के दोनां और समाधि स्मारक एवं कब्रगाह दिखाई पड़ते थे। प्रत्येक समाधि स्मारक इस तरह का बनाने की कोशिश की जाती थी, जिससे कि सबकी नजरें उस पर जायें। समाधि स्मारक सिर्फ मरने वाले के परिवारी एवं मित्रां के ही देखने

के लिये नहीं हुआ करते थे, बल्कि सभी के देखने के लिये होते थे। मरने वाले की याद में बनाये गये समाधि स्मारकों को हर साल सजाया सँवारा जाता था। भूमि के नीचे तो कब्र होती थी और भूमि के ऊपर स्मारक बनाया जाता था। इन स्मारकों के ऊपर जो कुछ लिखा जाता था, वह काफी कुछ अलंकारिक और कान्यात्मक भाषा में होता था। किस तरह की भाषा इन स्मारकों पर लिखी जाती थी, इसका एक उदाहरण कि स्मारकों पर मरने वाले की ओर से लिखाया जाता था – "ऐ राह से गुजरने वाले मित्र, मैंने इस दुनिया में आकर क्या भूमिका निभायी, उसका वर्णन इस प्रकार है––––" और अन्त में लिखा होता था कि ''आपने यह सब पढ़ लिया तो आपकी यात्रा शुभ हो"। कभी–कभी स्मारकों पर लिखा हुआ पढ़ने के बाद किसी दर्शक की प्रतिक्रिया भी लिख दी जाती थी। समाधि–लेखों की भाषा पुस्तकों की भाषा से थोड़ी आसान हुआ करती थी। पुस्तकों की भाषा अधिक जटिल हुआ करती थी।

सामान्य रूप से सड़कों के दोनों ओर ही ये समाधि स्मारक बनाये जाते थे। कई समाधि स्मारक इतने सुन्दर और शानदार होते थे कि बरबस ही सड़क चलने वालों का ध्यान उन स्मारकों की ओर चला जाता था। इन समाधि स्मारकों के आस–पास का स्थान इस तरह से तैयार किया जाता था कि आने जाने वालों के लिये थोड़ी विश्रान्ति मिल सके। इन समाधि स्मारकों के ऊपर जो लेख लिखे जाते थे, वे मरने वाले के जीवन की सभी अच्छी–अच्छी बातों से ही जुड़े हुए होते थे। कभी भी मरने वाले के जीवन की खराब बातां को, या उसके जीवन को नहीं लिखा जाता था। हमेशा मरने वाले के जीवन की सकारात्मक बातां को ही समाधि लेख में लिखा जाता था। मरने वाले के जीवन की नकारात्मक बातों के लिये समाधि लेख में कोई स्थान नहीं रहता था। सामान्य रुप से सभी प्रभावशाली लोग अपनी मृत्यु के पूर्व ही समाधि लेख लिखवा दिया करते थे। ये समाधि लेख लिखने वाले लोग उन प्रभावशाली के नजदीकी ही हुआ करते थे। कई बार स्वयं मरने वाला व्यक्ति ही अपने समाधि लेख को लिखकर तैयार करता था। जिस तरह से मरने वाला अपनी वसीयत तैयार करता या करवाता था, उसी तरह से अपने समाधि लेख को भी तैयार कराता था। मरने वाले के प्रति सम्मान प्रकट करने के कई अलग–अलग तरीके भी प्रयोग में लाये जाते थे। जैसे–यदि किसी मरने वाले को कोई खास किस्म का सेंट (इत्र) पसंद हो तो, उस मरने वाले के साथ वह सेंट भी दफना दिया जाता था। इसी तरह मरने वाले को कोई खास किस्म के कपड़े पसंद हों तो, में काफी लम्बे समय तक मरने वालों को चिता पर जलाया जाता रहा। कई मरने वालों की चिता पर वह सेंट (इत्र) छिड़का जाता था, जो संट मरने वाले को अपने जीवन में बहुत पसंद आता था।

यूरोप में पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच के एक लाख से अधिक समाधि लेख पुरातत्वविदां को अभी तक मिले हैं। कई समाधि लेखों में जीवन की दार्शनिक बातें भी लिखी जाती थीं। अपवादस्वरूप कुछ समाधि स्मारक (निजी घरों में) ऐसे लोगों के भी हुआ करते थे, जो साधारण वर्ग से सम्बन्धित होते थे। इन समाधि लेखों पर जो दार्शनिक अंदाज के वाक्य हुआ करते थे, वे कुछ इस तरह के होते थे–"मैंने उतना जीवन जिया, जितना मेरे लिये तय था। मैं लोगों को सुझाव देता हूँ कि वे अपने जीवन को मुझसे अधिक आनंद के साथ जियें"। कई समाधि लेखों पर इस तरह के वाक्य भी लिखे होते थे कि–"हमेशा अपने जीवन में डॉक्टरों से बचें, क्योंकि मैं डॉक्टर के कारण ही मरा हूँ"। कई समाधि लेखों में मरने वाले के दुश्मनों के

लिये फटकारने वाली भाषा में बहुत कुछ लिखा जाता था, दुश्मनों के लिये गालियाँ भी लिखी जाती थीं। कभी–कभी इन समाधि लेखों में मरने वाले के परिवारी एवं नजदीकी लोगों के लिये भी गालियाँ और कड़ी भाषा लिखी जाती थी। यदि किसी मरने वाले के परिवार के बेटे या किसी मित्र के प्रति, मरने वाले के मन में कोई गुस्सा या वितृष्णा हो, तो उसे भी मरने वाला अपने समाधि लेख में लिखकर मरता था। रोमन समय में कई समाधि लेखों को काट–पीटकर कम कर दिया जाता था, यदि मरने वाले की मौत के बाद परिवारीजनां या उत्तराधिकारियों को समाधि लेख में कुछ अपने बारे में अधिक आपत्तिजनक लगता था। अर्थात् समाधि लेख को सेंसर भी किया जाता था, लेकिन सेंसर करने का अधिकार उत्तराधिकारी को ही होता था, को होता था। मरने वाले के जीवन में जिस–जिस ने भी धोखा दिया हो, उन सभी धोखा देने वालों को समाधि लेख में गालियाँ लिखी जाती थीं, और बुरा–भला कहा जाता था।

यूरोपीय समाज में अक्सर ही प्रभावशाली लोगों के निजी जीवन को जनता से छुपाया जाता था। इसी छुपाव को एक नियम के रूप में पूरे यूरोप में पालन किया जाता था। इस के घरों के ड्राइंगरूम में कुछ लिखे हुए वाक्य टँगे रहते थे। वे वाक्य कुछ इस तरह के होते थे, "इस घर में आने पर आप अपने घर के आपसी झगड़ों को दिमाग से निकाल दें तो अच्छा होगा"। "इस घर में आने पर आप अपनी जबान पर काबू रखें तो अच्छा होगा"। "अपनी वासना को काबू में रखें"। "अपनी कामुक दृष्टि पर काबू रखें और इस घर की महिलाओं पर अपनी कामुक दृष्टि नहीं डालें"। "इस घर में प्रवेश करने पर अपने चेहरे पर शुचिता–पवित्रता का भाव रखें"। इस तरह के वाक्य अक्सर प्रभावशाली लोगों के घरों के ड्राइंगरूम में लिखे हुआ करते थे। इस तरह के वाक्यों को पढ़कर किसी अतिथि को बुरा भी नहीं लगता था, क्योंकि इस श्रेष्ठि वर्ग के सभी घरों में ही इस तरह से लिखा जाता था। इस तरह के लेखन को लोगों को सदाचारी बनाने के लिये जरूरी माना जाता था (कारण यह रहा कि समाज के श्रेष्ठि वर्ग में और साधारण वर्ग के बीच में सदाचारी लोगों की संख्या बहुत ही कम हुआ करती थी। शुचितापूर्ण होना, सदाचारी होना एक तरह का अपवाद ही हुआ करता था।) कई परिवारों में ऐसा भी हो जाता था कि पति से पहले पत्नी की मृत्यु हो जाती थी, तब ऐसी स्थिति में उस परिवार का पति अपनी पत्नी की याद में कुछ वाक्य लिखवाकर घर के ड्राइंगरूम में रखवाता था। इसी तरह पत्नी के समाधि स्मारक पर भी उस मरने वाली महिला के गुणों का वर्णन लिखा जाता था। वह कुछ इस प्रकार से लिखा जाता था कि–"उसने कभी भी अपने पति को धोखा नहीं दिया। वह कभी भी किसी गैर मर्द के साथ नहीं सोयी। उसने पैसे के लिये कभी अपने शरीर का सौदा नहीं किया। उसने अपनी शुचिता को हमेशा बरकरार रखा। उसने कभी व्यभिचार नहीं किया। ये सभी वाक्य पत्नी की प्रशंसा में उसका पति समाधि स्मारक पर लिखवाता था। अपने पति के किसी अपराध में यदि पत्नी को जेल हो जाये तो यह बात भी समाधि स्मारक पर लिखवाई जाती थी।

शासक वर्ग को अपने अधीनस्थ अधिकारियों या कर्मचारियों की निजी जिंदगी में हस्तक्षेप करने का अधिकार हुआ करता था। नैतिकता को बनाये रखने की दृष्टि से यह उचित माना जाता था। शासक वर्ग को नैतिकता के सबसे ऊँचे पायदान पर माना जाता था। यदि शासक वर्ग किसी के निजी जीवन को अनैतिक माने तो फिर उसे दण्ड दिया जा सकता था, उसका

मजाक बनाया जा सकता था, उस अनैतिक व्यक्ति के बारे में पत्रक बनाकर बाँटे जा सकते थे। शासक वर्ग द्वारा यह कहा जाता था कि अनैतिकता का सबसे बुरा असर साधारण नागरिकों पर पड़ेगा। इसलिये साधारण लोगों के बीच नैतिकता को बनाये रखने के लिये शासक वर्ग की जिम्मेदारी हुआ करती थी। शासक वर्ग द्वारा किसी को अनैतिक पाये जाने पर, उस अनैतिक व्यक्ति का अपमान भी किया जाता था, उसे भली–बुरी गालियाँ भी दी जाती थीं। अनैतिक क्या माना जाता था? उदाहरण के लिये यदि किसी सीनेटर ने अपनी र

कई बार शासक वर्ग के लोग इस तरह की अनैतिकता के बारे में फैसले लेने से पूर्व अपने मित्रों और परिवारी लोगों के सुझाव भी लिया करते थे। इससे जनता के बीच उन शासक वर्ग के लोगों की आलोचना कम होती थी, ऐसा माना जाता था। कई बार शासक वर्ग के लोग अपने ही परिवार के लोगों के बारे में भी फैसला लेने से पूर्व अपने मित्रां आदि से सलाह किया करते थे। उदाहरण के लिये यदि किसी शासक वर्ग को अपने बेटे को सजा देनी हो, अपनी पत्नी को तलाक देना हो, तलाकशुदा महिला से दोबारा शादी करनी हो, किसी गुलाम को छोड़ना हो, उसे स्वतन्त्र करना हो, या फिर आत्महत्या ही करनी हो, इन सभी मामलों में
आस–पास के मित्रों से सलाह ली जाती थी। यदि कोई शासक वर्ग का व्यक्ति अपने मित्रों से बिना सलाह लिये आत्महत्या कर लेता था, तो इसे कायरता माना जाता था, लेकिन सलाह लेकर आत्महत्या करे तो फिर इसे बहादुरी माना जाता था। कई बार शासक वर्ग के लोग अपने इन्हीं मित्रां की मजाक बनाते थे और उनका उपहास करते थे। प्रत्येक शासक वर्ग के परिवार की एक मित्र मण्डली हुआ करती थी। इसी मित्र मण्डली के सदस्यों के साथ सलाह–मशविरा किया जाता था। लेकिन इस मित्र मण्डली के सदस्य स्थायी नहीं हुआ करते थे। इनमें नये
का जाना लगा रहता था। कभी–कभी मित्र मण्डली के सदस्यों में
भी आपस में झगड़ा हो जाया करता था। इस कारण भी मित्र मण्डली के सदस्य बदले जाते थे। शासक वर्ग के किये हुए गलत कामों की जानकारी भी इसी मित्र मण्डली के माध्यम से ही बाहर आ पाती थी। इस मित्र मण्डली के कारण भी कई सम्राटां को शासक वर्ग के गर्वनरों को अपनी सत्ता से जाना पड़ा। एक मशहूर रोमन सम्राट प्लिनी को अपनी मित्र मण्डली के चलते ही अपने गर्वनर को सता से हटाना पड़ा था। इसी तरह सम्राट सेनेका को मित्र मण्डली के सुझाव पर अपने कुछ वाणिज्य दूतों को उनके पदों से हटाना पड़ा था। शासक वर्ग के लोग हमेशा ही अपने अधीनस्थों की झूठी निन्दा किया करते थे। यह झूठी निन्दा करना उनके लिये आमोद–प्रमोद का एक साधन हुआ करती थी। कोई भी शासक वर्ग का व्यक्ति झूठी निन्दा करने में कोई हिचक नहीं रखता था। यह निन्दा स्तुति करने की खुली छूट शासक वर्ग को होती थी। दूसरी ओर समाज के साधारण वर्ग को शासक वर्ग की निन्दा स्तुति करने का अधिकार नहीं होता था। छुप–छुपकर, अन्दरूनी तरीके से साधारण वर्ग के लोग थोड़ी–बहुत निन्दा शासक वर्ग की कर सकते थे, लेकिन यह निन्दा खुलेआम नहीं कर सकते थे। हाँ,
कभी–कभी किसी सम्राट के मर जाने के बाद उसके अत्याचारों की निन्दा साधारण वर्ग के
द्वारा की जा सकती थी। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है समझने की कि किसी भी सम्राट के जिन्दा रहते उसके अत्याचारों की निंदा साधारण वर्ग के लोग नहीं कर सकते थे। जीवित रहते हुए सम्राट की तो सिर्फ प्रशंसा ही की जा सकती थी। सम्राट चाहे जितना भी अत्याचार

अपनी प्रजा पर करे, लेकिन उसकी प्रशंसा ही की जा सकती थी। सम्राट की मृत्यु के बाद ही उसके अत्याचारों की निंदा की जा सकती थी।

राजनैतिक गलियारों में जो सीनेटर हुआ करते थे, वे कोई सामान्य लोग नहीं हुआ करते थे। सीनेटरों द्वारा जो भी कहा जाता था, वह सार्वजनिक हुआ करता था और उस पर भरोसा किया जाता था। जो सीनेटर होता था, वह अपने अधीनस्थों एवं सहयोगियों के व्यक्तिगत एवं

की परख करता था और उस आधार पर फैसले भी किया करता था। जिस तरह किसी सेना का जनरल अपने से नीचे के अधिकारियों के काम–काज की देख–रेख करता है और अपने अधिकारियां के बारे में फैसले करता है, उन अधिकारियां को आदेश या निर्देश देता है; उसी तरह से सीनेटर अपने अधीनस्थों के साथ पेश आता था। सीनेटर की वही भूमिका राजनैतिक व्यवस्था में थी, जो आज के समय में सेना के जनरल की सेना में होती है। शासक वर्ग पूरे वैधानिक तरीके से ही शासन करता था। शासक वर्ग के लोगों के पास पद–ओहदे हुआ करते थे, इन पद–ओहदों के अधिकार हुआ करते थे। इन्हीं अधिकारों और कानूनों के आधार पर ही शासक वर्ग शासन किया करता था। एक सीनेटर को इस बात का अधिकार होता था कि वह साधारण लोगों को और अपने अधीनस्थों को यह कह सके कि कैसा जीना है कैसे नहीं? कई सीनेटर ऐसे भी होते थे जो इतिहासकार और दार्शनिक हुआ करते थे। ऐसे सीनेटरों की हैसियत और इज्जत अधिक हुआ करती थी, जो इतिहासकार और दार्शनिक होते थे। ऐसे सीनेटरों द्वारा पुस्तकें भी लिखी जाती थीं। उन पुस्तकों का महत्त्व अन्य पुस्तकों से अधिक होता था। एक इतिहासकार सीनेटर ही लोगों को बताता था कि रोमन

ही होती थीं जो इतिहासकार और दर्शनशास्त्री होते थे। इन्हीं सीनेटरों की मदद से लोगों को राजनैतिक, नैतिक और ऐतिहासिक शिक्षा दी जाती थी और सच्चाइयों से रूबरू कराया जाता था। लोगों में अपने देश और सभ्यता पर गौरव पैदा हो, इसकी जिम्मेदारी भी ऐतिहासिक सीनेटरों की होती थी। राजनीति और दर्शनशास्त्र के आपसी सम्बन्धों को बताने और व्याख्यायित करने का कार्य दार्शनिक सीनेटर किया करते थे। यूरोप में दर्शनशास्त्रियों को बहुत अधिक बुद्धिमान माना जाता था। दर्शनशास्त्र की पुस्तकों को बहुत ऊँचा माना जाता था।

प्रत्येक श्रेष्ठि वर्ग के व्यक्ति (सीनेटर, जमींदार, दार्शनिक, इतिहासकार, बड़ा व्यापारी) को बहुत गंभीर माना जाता था। श्रेष्ठि वर्ग के व्यक्ति से सार्वजनिक स्थानां पर ऐसा कोई भी कार्य नहीं करने की अपेक्षा की जाती थी, जिस कार्य को हल्का समझा जाता हो। (उदाहरण के लिये शासक वर्ग का कोई व्यक्ति सार्वजनिक स्थान पर मजाक नहीं कर सकता था, जोक (चुटकले) नहीं सुना सकता था, हल्की फुल्की बातें नहीं कर सकता था। यदि कोई शासक वर्ग का व्यक्ति ऐसा करे तो उसे बहुत बड़ी विडम्बना या अफसोस माना जाता था। शासक वर्ग के लोग अपने निजी जीवन में ही हल्की–फुल्की बातें कर सकते थे। शासक वर्ग के लिये निजी जीवन में ही हँसी–मजाक करने का समय होता था, सार्वजनिक जीवन में शासक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को धीर–गंभीर बनकर ही रहना पड़ता था। सार्वजनिक जीवन में शासक वर्ग के लोग धीर–गंभीर, स्वभाव से कठोर, निष्ठुर, अकड़ वाले हुआ करते थे। व्यक्तिगत जीवन में शासक वर्ग के लोग सार्वजनिक जीवन से अलग हो सकते थे। रोमन समाज में अभिजात्यवर्गीय कृत्रिमता की एक लम्बी परम्परा रही। शासक वर्ग में यह कृत्रिमता अधिक नजर आती थी। इस कृत्रिमता के भी

नियम कानून हुआ करते थे। इन नियम कानूनों का पालन काफी कड़ाई से किया जाता था। शासक वर्ग के लोग यदि इन नियम कानूनों का कड़ाई से पालन नहीं करें तो उन्हें अच्छा शासक नहीं माना जाता था। अपने आपको अच्छा शासक साबित करने के लिये सभी शासक वर्ग के लोग अभिजात्यीय कृत्रिमता अर्थात् सार्वजनिक जीवन में कठोरता एवं निष्ठुरता के नियमों का कड़ाई से पालन करते थे। लेकिन यही शासक वर्ग के लोग अपने निजी जीवन में उस तरह का व्यवहार करते थे, जैसा व्यवहार साधारण लोग अपने जीवन में प्रतिदिन करते थे। साधारण लोग सार्वजनिक रूप से गीत गा सकते थे, हँसी–मजाक कर सकते थे। यूरोपीय समाज में साधारण लोग शासक वर्ग की तुलना में अधिक हँसी–मजाक कर सकते थे। शासक वर्ग के लोगों द्वारा सार्वजनिक स्थान पर हँसी–मजाक करना अभद्रता एवं अशिष्ट माना जाता था। इस अभिजात्यवर्गीय कृत्रिमता में भी ग्रीक शैली और रोमन शैली में फर्क हुआ करता था। इस अभिजात्यवर्गीय कृत्रिमता में घमण्ड का तत्व बहुत प्रधान रहता था। यूरोपीय समाज में शासक वर्ग के आदेशों का पालन करना एवं कानूनों को मानना, ये दोनां बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। रोमन साम्राज्य तो इसके लिये (कानूनों को पालन करना एवं शासक वर्ग के आदेशों और झगड़ों में नियम कानून उसी के पक्ष में हुआ करते थे जो ताकतवर होते थे। आपसी झगड़ों या विवादों का निपटारा करते समय कभी भी रोमन समय में परम्पराओं को महत्त्व नहीं दिया जाता था। रोमन संस्थाओं में हमेशा ही अनिश्चितता, अस्थिरता और घालमेल रहा करता था। रोमन साम्राज्य में लोगों की निष्ठा शासक वर्ग के लिये ही हुआ करती थी–कि किसी संधि–समझौते के लिये। रोमन समय में शासक वर्ग के लिये तो परम्पराओं का कोई महत्त्व नहीं होता था, लेकिन साधारण लोगों के लिये और सार्वजनिक संस्थाओं के लिये परम्पराओं की बात कही जाती थी। राजनैतिक बातें करने का अधिकार सिर्फ शासक वर्ग के लोगों को ही होता था, साधारण लोग राजनैतिक बातें नहीं कर सकते थे। शासक वर्ग के लोग कभी–कभी परम्पराओं की दुहाई दिया करते थे, लेकिन तभी जब कोई प्रतिद्वन्दी या विरोधी आगे निकलने की कोशिश किया करता था। इन परम्पराओं का प्रयोग शासक वर्ग के लोग अपने–अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये भी किया करते थे। परम्परा नई हो या पुरानी उसे अपने हित में इस्तेमाल करना शासक वर्ग को बहुत अच्छे से आता था। लेकिन ध्यान रहे शासक वर्ग अपने स्वयं के लिये परम्पराओं का कोई महत्त्व नहीं मानता था। परम्पराओं का प्रयोग एक तरह से शासक वर्ग के लिये एक हथियार की तरह ही होता था।

सार्वजनिक जीवन यूरोपीय समाज में हमेशा शासक वर्ग की इच्छा से ही चला करता था। यूरोपीय समाज का निजी जीवन इस डर से संचालित होता था कि शासक वर्ग क्या कहेगा? यूरोपीय समाज में जनमत एक तरह से आत्मनियंत्रण का कार्य करता था। कभी–कभी यह जनमत शर्मनाक तरीके से फट पड़ता था। कभी–कभी जनमत के दबाब में शासक वर्ग को भी शर्मसार होना पड़ जाता था। लेकिन यह शर्मसार होना शासक वर्ग के लिये एक तरह से अपवाद स्वरूप ही होता था, यह हमेशा नहीं होता था। यूरोपीय समाज काफी कुछ अंधविश्वास में भी फँसा हुआ था। अंधविश्वासी मान्यतायें पूरे यूरोप में बिना किसी अपवाद के प्रचलित थीं। ये अंधविश्वास समाज के सभी वर्गों में हुआ करते थे, बिना किसी अपवाद के। भूत–प्रेत–डायन आदि के किस्से कहानियाँ पूरे यूरोप में सुने और सुनाये जाते थे। इन किस्से कहानियों में अक्सर ही भूत–प्रेत समाधि स्मारकों, कब्रिस्तानों में पाये जाते थे। यूरोपीय समाज में ज्योतिषशास्त्र

पर भी काफी अधिक भरोसा किया जाता था। ज्योतिषशास्त्र की काफी ऊँची मान्यता यूरोप में रही। ज्योतिषशास्त्र को यूरोप में काफी वैज्ञानिक माना जाता था। शासक वर्ग के अधिकांश से ही पूछ–ताछ करके महत्त्वपूर्ण एवं नये कार्य किया करते थे। ज्योतिषशास्त्र और उसकी गणनायं, भविष्यवाणियाँ, यूरोपीय संस्कृति का अंग रहे हैं। आज के यूरोप में चिकित्सकों, मनोचिकित्सकों, प्रोफेसरों, इंजीनियरां और वैज्ञानिकां को जो मान्यता प्राप्त है, वही मान्यता पुराने यूरोप में ज्योतिषशास्त्रियों की रही। सामान्य रूप से प्रत्येक शासक वर्ग के परिवार के पास अपना ज्योतिषी होता था। जमींदार परिवारां के भी ज्योतिषी हुआ करते थे। स्वप्न ज्योतिष का भी महत्त्व यूरोप में हुआ करता था। अर्थात् स्वप्नों में दिखायी देने वाली घटनाओं के आधार पर भी भविष्यवाणियां की जातीं थीं। स्वप्नों को भी शकुन–अपशकुन के आधार पर विभाजित किया जाता था। कई बार स्वपनों के आधार पर लोग अपने मुकदमों की तारीखें भी बदलवाया करते थे। उदाहरण के लिये – यदि किसी व्यक्ति को रात्रि में स्वप्न आया कि वह मुकदमा हार गया है, तो वह व्यक्ति सुबह सबसे पहले अपने ज्योतिषी से परामर्श करेगा। और यदि ज्योतिषी ने उस स्वप्न के बारे में बता दिया कि यह सच हो सकता है तो फिर वह व्यक्ति अपने सीनेटर के पास जाकर उस दिन मुकदमे की सुनवाई टलवाने का प्रयास करेगा। ज्यादातर स्वप्नों के अर्थ ज्योतिषशास्त्र के अनुसार अस्पष्ट हुआ करते थे। यूरोपीय लोगों ने अपने क्षेत्रों

की बड़ी

भूमिका रही। उदाहरण के रूप में जब अफ्रीका पर कब्जा होने के बाद यूरोपीय शासक वर्ग के

ली जाती थी।

कई यूरोपीय शासक वर्ग के लोगों को स्वप्न ज्योतिष के आधार पर भी गवर्नर बनाकर अफ्रीका में भेजा गया। यदि स्वप्न में किसी को भूत आदि दिखायी देते हों तो उस व्यक्ति को अनैतिक और खराब माना जाता था। दार्शनिक लोग इन भूत–पेतों के अस्तित्व के सिद्धान्तों की व्याख्या किया करते थे। घरों में भूत–प्रेतों से बचने के लिये कई तरह के टोने–टोटके किये जाते थे। घरों के बाहर कई तरह के चित्र आदि लटका दिये जाते थे, जिससे कि उस घर पर किसी भूत–प्रेत का साया नहीं पड़े। कई घरों के बाहर कुछ देवी–देवताओं के या कुछ खास किस्म के जीव–जन्तुओं के चित्र भी टांगे जाते थे। मान्यता यही थी कि इस तरह के चित्रों को टाँगने से घर में भूत–प्रेतों की परेशानी नहीं आती है। यूरोपीय समाज में भूत, प्रेत, डायन एवं शैतान का सबसे अधिक डर लोगों के मन में रहता था। उसके बाद दूसरे स्थान पर पड़ोसियों से ईर्ष्या और दुश्मनों की घृणा, इन दोनां का डर भी लोगों के मन में समाया होता था। यह बात ध्यान देने की है कि यह भूत, प्रेत, डायन और शैतान का डर अमीर लोगों के मन में अधिक होता था, साधारण लोगों के मन में कम रहता था। साधारण लोगों के मन में रीति–रिवाज और परम्पराओं का डर अधिक रहता था। ये रीति–रिवाज और परम्परायें ही साधारण वर्ग के लोगों के लिये तत्वज्ञान और जीवन दर्शन माने जाते थे। साधारण लोगों के लिये इन परम्पराओं, रीति–रिवाजों का महत्त्व इतना ही होता था, जितना महत्त्व ईसाई धर्म के मानने वालों के लिए 'ओल्ड टेस्टामेंट' का होता है। साधारण लोगों को हमेशा सीनेटरों की ओर से भी हिदायतें दी जाती रहती थीं किस तरह जीना और किस तरह नहीं जीना? सीनेटरों द्वारा बतायी जाने वाली हिदायतों के आधार पर जीने वालों को बुद्धिमान माना जाता था, और जो लोग इन हिदायतों विरुद्ध जीवन बिताते थे, उन्हं पागल या मूर्ख माना जाता था। शासक वर्ग के लोग अपने बच्चों

को दूसरों का उदाहरण देकर बताया करते थे कि क्या मूर्खता है, क्या बुद्धिमानी है, क्या ठीक है, क्या गलत है? लेकिन बच्चों को यह सब सिखाने बताने का कार्य घरों के अन्दर ही हुआ करता था। शासक वर्ग का व्यवहार किसी दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर नहीं होता था, बल्कि शासक वर्ग का अभिजात्यीय व्यवहार अपने आप में ही एक कानून हुआ करता था। साधारण लोगों के बीच में कहावतों और लोकोक्तियों का काफी चलन हुआ करता था। इन कहावतों और लोकोक्तियों की मदद से साधारण लोग अपने परिवार के बच्चों को शिक्षा दिया करते थे। स्कूल में पढ़ने की हैसियत अधिकांश रूप से शासक वर्ग के ही बच्चों की हुआ करती थी। शासक वर्ग के दरबारियों के बच्चे भी कभी–कभी स्कूल में पढ़ने के लिये जाया करते थे। स्कूली शिक्षा को उदार (लिबरल) माना जाता था। घरों में जो शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती थी वह काफी कुछ कहानी–किस्सों के माध्यम से दी जाती थी। शासक वर्ग के लोग भी कहानी–किस्सों के माध्यम से अपने बच्चों को कुछ सिखाने की कोशिश किया करते थे। साधारण लोगों को हमेशा ही अविवेक और अनैतिकता से डरना ही पड़ता था। साधारण लोग अपने बच्चों को इसी तरह के कहानी–किस्से अधिक सुनाया करते थे, जिससे कि उन बच्चों के मन में भी अनैतिकता और मूर्खता के प्रति डर पैदा हो, और वे बच्चे उस रास्ते पर नहीं जायें। कई बार शासक वर्ग के बच्चे भी पूरी शिक्षा घर में ही लेते थे। शासक वर्ग के ऐसे लोगों के समाधि स्मारक पर लिखवाया जाता था, जिन्हांने पूरी शिक्षा घर पर ही ली हो। शासक वर्ग के बच्चों को घर पर भी पढ़ाने का इंतजाम किया जाता था। शासक वर्ग के बच्चों को पढ़ाने के लिये घर पर अध्यापकों को बुलाया जाता था। शासक वर्ग के बच्चों को घर पर पढ़ाने के लिये दर्शनशास्त्र के भी जानकार (फिलॉसफर) आया करते थे। जिन शासक वर्ग के लोगों की शिक्षा घर पर ही हुई हो, उन्हं और भी अधिक सम्मान मिला करता था। यह बात उनके समाधि स्मारकों से स्पष्ट हो जाती थी। बिना किसी फिलॉसफर की मदद से दर्शनशास्त्र पढ़ने वाले को काफी सम्मान मिला करता था। ऐसे लोगों के समाधि स्मारक पर लिखा जाता था–"जो व्यक्ति यहाँ पर दफन है, उसे अपने जीवन में किसी भी दर्शनशास्त्री की जरूरत नहीं पड़ी। यह व्यक्ति बिना किसी फिलॉसफर की मदद से जीवन दर्शन को जानता था"। इस तरह की भाषा समाधि स्मारकों पर लिखवाई जाती थी।

यूरोपीय समाज के सभी वर्गों में मौखिक रूप से ज्ञान और समझ को देने की एक लम्बी परम्परा रही। कहावतों के माध्यम से भी यही ज्ञान और समझ दिये जाने का कार्य हुआ करता था। कई तरह की समस्याओं का समाधान भी इन कहावतों और मौखिक ज्ञान के आधार पर किया जाता था। कई तरह के जीवन रहस्यों को खोलने का काम भी इन्हीं कहावतों और मौखिक ज्ञान (Oral Knowledge) के आधार पर हुआ करता था। यूरोपीय समाज में समाज के वर्ग विभाजन को कभी भी गलत नहीं माना गया, लेकिन गलत माना गया व्यक्ति को, मनुष्य को, जो उस वर्गों में विभाजित समाज में रहता था। यूरोपीय समाज में यह मान्यता बहुत ही प्रबल थी कि मनुष्य खराब होता है, व्यक्ति खराब होता है, व्यक्ति पापी होता है, व्यक्ति में ही सारी खराबियाँ होती हैं। यूरोप में कभी भी यह नहीं माना जाता था कि व्यवस्था खराब हो सकती है, कानून गलत हो सकते हैं, नियम गलत हो सकते हैं। यूरोप में यह माना जाता था कि मनुष्य में ही मूलभूत कमी है, मूलभूत त्रुटि है। इन मूलभूत कमियों में मनुष्य की दयालुता, उसका कोमलपन, उसकी करुणा आदि को प्रमुख माना जाता था। इसी तरह असंयम, अमर्यादा,

फिजूलखर्ची आदि को भी मनुष्य की कमी माना जाता था। लगभग 500 सालों तक यूरोप में यह मान्यता रही कि पूरा का पूरा यूरोपीय समाज पतित है। पूरी की पूरी रोमन सभ्यता को एवं ग्रीक सभ्यता को भी पतित माना गया। जो भी मौखिक दार्शनिक तत्व यूरोप में प्रचलित हुए थे, उनमें से कुछ तो वास्तविकता के अनुरुप हुआ करते थे, लेकिन कुछ वास्तविकता के बिल्कुल विपरीत हुआ करते थे। अधिकांश दार्शनिक तत्व अत्यन्त ही रहस्यात्मक हुआ करते थे।

यूरोपीय दर्शन के अनुसार मनुष्य की कोमलता, दयालुता, मनुष्य को गिराती है और सम्पूर्ण समाज का भी विनाश कर देती है। यूरोपीय दर्शन कठोरता एवं निष्ठुरता को अधिक ऊँचा मानता था। इसलिये समाज के लोगों को, परिवार के लोगों को कठोर एवं निष्ठुर बनाने के ही सारे उपाय किये जाते थे। यूरोपीय दर्शन में यह भी माना जाता था कि यह दयालुता या कोमलता मनुष्य स्वभाव का मूलभूत दुर्गुण या मूलभूत कमीया त्रुटि है। इस कोमलता या दयालुपन के लक्षण क्या माने जाते थे? किसीके साथ खासकर अपने से छोटे आदमी से विनम्रता के साथ बात करना, किसी साधारण व्यक्ति के प्रति प्रेम और स्नेह प्रदर्शित करना, धीरे–धीरे चलना, अपने परिवार के लोगों के साथ शांति और हँसी–मजाक के साथ समय बिताना, अपने परिवार के नौकर–चाकरों के दुःख दर्द में शामिल होना, अपने अधीनस्थ कर्मचारियों या लोगों को इज्जत या सम्मान देना आदि–आदि दयालुपन और कोमलता के लक्षण माने जाते थे। रोमन एवं ग्रीक सभ्यताओं में, इस दयालुपन और कोमलता को चरित्र की दुर्बलता माना जाता था। यह माना जाता था कि चरित्र से दुर्बल व्यक्ति किसी भी तरह से समाज का भला नहीं कर सकता, सामाजिक बुराइयों से नहीं लड़ सकता, समाज को सही दिशा नहीं दे यदि कोई व्यक्ति किसी महिला से बहुत अधिक प्यार करता हो, तो यह भी चरित्र की दुर्बलता मानी जाती थी। यदि कोई पति अपनी पत्नी को बेहद प्यार करता हो और उसकी अधिक देखभाल करता हो तो इसे भी कोमलता और दयालुपन का ही लक्षण माना जाता था, और परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति को चरित्र से दुर्बल माना जाता था। ऐसा माना जाता था कि कोमल और दयालु व्यक्ति ही कामुक एवं लम्पट होता है और भोग–विलासी भी होता है। किसी भी व्यक्ति में कोमलता और दयालुपन कहाँ से पैदा होता था? इसके बारे में माना जाता था कि अकर्मण्यता से ही यह कोमलता एवं दयालुपन पैदा होता है। इसलिये यूरोपीय समाज में प्रत्येक व्यक्ति को कहा जाता था कि वह अपनी अकर्मण्यता से लड़े, ताकि उसमे कोमलता या दयालुपन पैदा न हो पाये। यूरोपीय समाज की मान्यता थी कि यदि व्यक्ति काम नहीं करेगा निठल्ला बैठा रहेगा तो उसकी शारीरिक क्षमता कम हो जायेगी, उसकी शारीरिक मांसपेशियाँ कमजोर हो जायेंगी। आज के आधुनिक यूरोप में यह माना जाता है कि यदि व्यक्ति काम नहीं करेगा तो फिर अपनी अतिरिक्त ऊर्जा को सैक्स में खर्च करेगा। रोमन और ग्रीक सभ्यता में तो किसी भी बहाने बिना कार्य के रहना ही गलत माना जाता था। जैसे संगीत आदि सुनना, नृत्य करना या आनंद के लिये कुछ करना, यह सब कुछ अकर्मण्यता में ही आता था।

यूरोपीय समाज में फिजूलखर्ची को भी बुराई माना जाता था। यह माना जाता था कि फिजूलखर्ची के चलते ही लोगों में लालच पैदा होता है और इसी से महत्वाकांक्षायें अधिक बढ़ती हैं। इस फिजूलखर्ची के आधार पर लोगों की आलोचना भी की जाती थी। साधारण लोगों को भव्यता और शानो–शौकत से दूर रहने के लिये ही कहा जाता था, क्योंकि इस शानो–शौकत

और तड़क–भड़क को ही फिजूलखर्ची का कारण माना जाता था। इस फिजूलखर्ची से लालच पैदा होता था, और आगे व्यक्ति का पतन होता जाता था। साधारण लोगों के लिये जरूरत से अधिक पैसा नहीं होना चाहिए, नहीं तो वे लोग अकर्मण्य हो जायेंगे या लालची हो जायेंगे, और उनका पतन हो जायेगा, यह मान्यता पूरे यूरोप में हमेशा से रही। साधारण लोगों से अपेक्षा की जाती थी कि वे धन–सम्पत्ति के लिये कभी भी मन में लालच नहीं लायें। इसी तरह साधारण

से अपेक्षा की जाती थी कि वे बिना कार्य के कभी भी खाली नहीं बैठें। यदि कोई साधारण वर्ग का व्यक्ति थोड़ा अधिक पैसा कमाकर आराम और सुकून की जिन्दगी बिना काम किये बिताना चाहे तो यह अपराध माना जाता था, इसकी इजाजत (सुकून की जिन्दगी बिताने की बिना कार्य किये) नहीं होती थी। ऐसे लोगों को यूरोपीय समाज में मूर्ख कहा जाता था, जो साधारण वर्ग से सम्बन्ध रखते थे और अधिक पैसा बनाकर सम्पत्तिवान बनना चाहते थे। साधारण लोगों को गरीबी में ही जीवन बिताने का अधिकार होता था। सम्पत्ति बनाने का अधिकार तो सिर्फ शासक वर्ग या श्रेष्ठि वर्ग के लोगों को ही हुआ करता था। यूरोप में हुए सभी दार्शनिक एवं प्रभावशाली लोग (जिनका समाज पर प्रभुत्व हुआ करता था) सभी साधारण

को यही समझाते रहे कि उन्हं गरीबी में ही रहना चाहिए। इसके लिये तरह–तरह के तर्क दिये जाते थे। उदाहरण के लिये–साधारण लोगों को बताया जाता था कि एक जोड़ी या अधिक से अधिक दो जोड़ी जूते–चप्पल ही काफी होते हैं, 10–15 जोड़ी जूतों–चप्पलों को रखना कोई अक्लमंदी नहीं है। इसी तरह कपड़ों के बारे में, जीवन जरूरी अन्य वस्तुओं के बारे में भी कहा जाता था। मूल मान्यता के पास जरूरत से अधिक एवं अतिरिक्त कुछ भी नहीं होना चाहिए। यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक होरेस, नौलेन, प्रॉडिकोस, म्यूसोनियस आदि–आदि इस यूरोपीय मान्यता, कि साधारण वर्ग के लोगों को जरूरत से अधिक कुछ भी नहीं मिलना चाहिए, को जोर–शोर से आगे बढ़ाने वालों में रहे। बाद में यही मान्यता अरस्तू, सुकरात और प्लेटो जैसे दार्शनिकों ने पूरी ताकत से आगे बढ़ायी। साधारण

को आनंद लेने का अधिकार नाट्यघरों में ही होता था। अर्थात् साधारण लोग नाट्यघरों एवं अपने निवास स्थानां को छोड़कर अन्य किसी सार्वजनिक स्थान पर आनंद के लिये कुछ नहीं कर सकते थे। साधारण वर्ग के लोग आपस में एक दूसरे के साथ कंजूसी और लालच पर लम्बे–लम्बे भाषण दिया करते थे और एक दूसरे को समझाने की कोशिश भी करते रहते थे। लगभग सभी ग्रीक अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता रही कि–"समाज में उत्पादन का वास्तविक की जरूरतों को इतना कम कराने का होना चाहिए कि इन साधारण वर्ग के लोगों की अर्थव्यवस्था पर कोई भी निर्भरता नहीं रहे, अर्थात् इन साधारण लोगों का कोई भी बोझा अर्थव्यवस्था पर नहीं पड़े"। समाज का शासक वर्ग, श्रेष्ठि वर्ग चाहे जितनी सम्पत्ति एकत्रित कर सकता था, चाहे जितनी जमीन का मालिक हो सकता था, चाहे जितने नौकर–चाकर रख सकता था, चाहे जितनी अय्याशी और भोग विलास कर सकता था, चाहे जितनी महिलाओं को रखैल के रूप में रख सकता था, चाहे जितने मौज–मजा और आनंद से जीवन बिता सकता था। लेकिन साधारण वर्ग के लोगों के लिये यह सब कुछ वर्जित था। जिन साधारण लोगों के लिये यह सब कुछ वर्जित था, उसे शासक वर्ग द्वारा किया जाता देख भी साधारण लोगों के मन में शासक वर्ग के लिये सहानुभूति ही हुआ करती थी। साधारण वर्ग के लोग हमेशा ही शासक वर्ग के शानो–शौकत और आमोद–प्रमोद

को देखकर अपने आप को इसी बात से दिलासा दिया करते थे कि वे भी उसी प्रजाति के हैं जिस प्रजाति के शासक वर्ग के लोग हैं।

"स्नान, शराब और एक सुंदर महिला, शरीर को छिजाते (कमक कुरना) हैं", लेकिन ये तीनो ही जीवन की अत्यन्त ही जरूरी चीजें मानी जाती थीं। अर्थात् स्नान, शराब और सुंदर महिला को जीवन के लिये अत्यन्त ही जरूरी माना जाता था। कई समाधि स्मारकों पर सुन्दर महिलाओं एवं सेक्स के बारे में भी लिखा जाता था। कई समाधि स्मारकों पर शराब के बारे में भी लिखा जाता था। शासक वर्ग के बीच में आनंद लेने को उतना ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था, जितना कि सद्गुणों को। शासक वर्ग के घरों में आनंद लेने के अलग–अलग तरीके हुआ करते थे। उनमें से एक प्रमुख तरीका था पेंटिंगों (चित्रकला–तस्वीरां) को देखकर। अक्सर शासक वर्ग के लोग के लोगों के घर में एक चित्र मिला करता था, जिसमें कुछ इस तरह का चित्रण हुआ करता था – "कोई एक पुरुष अपनी रखैल महिला के पैरों के पास बैठा हुआ शराब के नशे में इतना धुत कि खड़ा भी नहीं हो सके, चेहरे पर दुःख और मायूसी के भाव।'' इस तरह के चित्र जो दुःख और मायूसी प्रकट करते हों, शासक वर्ग के लिये मनोरंजन का काम करते थे।

में शासक वर्ग को अच्छा लगे, इसके लिये शानदार इमारतें भी बनायी जाती थीं। लम्बी–चौड़ी सड़कें बनायी जाती थीं। शहरों में सुन्दरता बढ़ाने के लिये बाग–बगीचे भी बनाये जाते थे। साधारण लोगों को अचम्भा होता रहे, इस तरह की तकनीकों का सार्वजनिक प्रदर्शन किया जाता था। शहर की इमारतों को बनाने वाले कारीगर, इंजीनियरां द्वारा बनाये गये नक्शों के आधार पर ही काम करते थे। शहर की ऊँची–ऊँची और सुन्दर इमारतां को डिजाइन करने वाली कला का काफी सम्मान लोगों के मन में रहता था। शासक वर्ग के लोग भी इमारतों का निर्माण करने वाले इंजीनियरों का काफी सम्मान किया करते थे। इन्हीं इंजीनियरों के द्वारा सड़कें, नहरें जैसी बड़ी–बड़ी परियोजनाओं को साकार किया गया। प्रसिद्ध सम्राट नीरो के समय में इन्हीं इंजीनियरां की मदद से कई नहरें बनायी गयीं। नीरो सम्राट ने अपने समय में ऐसे कई निर्माण कराये जो साधारण लोगों को तथा शासक वर्ग के लोगों को भी आश्चर्यचकित करें। लेकिन बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से नीरो का तख्तापलट कर दिया गया था। यूरोप में किसी शिष्ट व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह सार्वजनिक स्थानां पर अपने गुलामों, नौकर–चाकरों के साथ अभद्रता और अशिष्टता से पेश नहीं आये। यूरोपीय समाज के सभी भद्रजनां को ही शिष्ट माना जाता था। इस भद्रलोक के लोग एक दूसरे का सम्मान करते थे। इस भद्रलोक का सम्मान साधारण लोग बहुत अधिक किया करते थे। समाज के श्रेष्ठ लोगों का ही सम्मान हुआ करता था। समाज के श्रेष्ठ वर्ग के लोगों को काफी घमण्ड अपने श्रेष्ठ होने का हुआ करता था। श्रेष्ठ वर्ग के लोग साधारण वर्ग के लोगों को बहुत ही बर्बर एवं असभ्य माना करते थे। इसी तरह श्रेष्ठि वर्ग के लोगों की यह भी मान्यता थी कि साधारण वर्ग के लोग अंधविश्वासी भी होते हैं। श्रेष्ठि वर्ग के लोग हमेशा साधारण वर्ग के लोगों के प्रति मन में दुर्भावना रखते थे। श्रेष्ठि वर्ग के लोगों साधारण लोगों के बारे में क्या भावना होती थी, इसका एक उदाहरण यह है– "सभी बर्बर एवं असभ्य लोग राजा के सामने पहुँचने पर ऐसे ही काँपें जैसे कि कोई अंधविश्वासी ईश्वर के सामने काँपता है या कोई गुलाम अपने नाराज मालिक के सामने काँपता है"। शासक वर्ग के लोगों की नजर में उदारता का काफी महत्त्व हुआ करता

था। लेकिन यह उदारता उस शासक वर्ग के अपने ही लोगों के लिये होती थी न कि साधारण के लिये। शासक वर्ग के लोगों की अपेक्षा सम्राट से यही हुआ करती थी कि सम्राट, शासक वर्ग के लोगों के प्रति उदारता बरते। जो सम्राट शासक वर्ग के प्रति उदारता रखता था वह अच्छा सम्राट माना जाता था। सम्राट की उदारता के क्या मायने होते थे? यदि सम्राट शासक वर्ग के विरुद्ध कोई कठोर कार्यवाही का आदेश नहीं दे तो वह सम्राट उदार माना जाता था। सम्राट यदि शासक वर्ग के लोगों के साथ सहजता और मुलायमियत से बात करे तो वह सम्राट उदार माना जाता था। यदि सम्राट किसी अपराध के लिये साधारण लोगों को कोई सजा या प्रताड़ना दे, और उसी अपराध के लिये शासक वर्ग के लोगों को छोड़ दे, तो वह सम्राट को करने का तरीका मनमौजी ही हुआ करता था। अधिकांश साधारण लोग भी यह सोचते थे कि उन्हें भी उतना ही उदार वातावरण मिलना चाहिए जो शासक वर्ग के लोगों को मिलता था, लेकिन ऐसा होता नहीं था के सोचने तक ही सीमित रहता था। सम्राट द्वारा लिये गये आर्थिक एवं राजनैतिक फैसलों से अधिक महत्त्वपूर्ण यह माना जाता था कि उस सम्राट के अपने अधीन तन्त्र के साथ सम्बन्ध कैसे हैं? कई बार इसी आधार पर सम्राटां को गद्दी से उतारा गया। यदि किसी सम्राट का निजी जीवन असंयमित–अमर्यादित रहा तो इस आधार पर भी उनका तख्तापलट होता रहा। यदि किसी सम्राट के निजी कार्यकलापां से राजनैतिक और आर्थिक नुकसान नहीं होता हो, तो फिर उस सम्राट की गद्दी को कोई खतरा नहीं रहता था। लेकिन सम्राट के निजी कार्य–कलापां से उसके अधीन तंत्र कर्मचारियों को नीचा देखना पड़ सकता था। यूरोप में मानवीयता, उदारता, (उदारीकरण), बराबरी आदि–आदि सब कुछ सम्राटां–शासकों के निजी जीवन एवं शासन तन्त्र के लोगों के आपसी सम्बन्धों और सम्राट एवं शासन तन्त्र के के आपसी सम्बन्धों की परतों में से ही निकले हैं। इसी तरह से कला–चित्रकारी, समाधि स्मारकों के लेखों को लिखने की कला, पत्र लेखन की कला, कविता लेखन, कहानी लेखन आदि सब कुछ शासक वर्ग की निजी जीवन शैली में से ही निकला था। मूर्तिचित्र बनाने की कला, मूर्ति शिल्प की कला, मनुष्य चित्र (Portrait) बनाने की कला का विकास भी शासक वर्ग के निजी जीवन के क्रियाकलापां से ही हुआ। शासक वर्ग की कई विचित्र मान्यताओं में से एक यह थी, "प्रेम या प्यार एक तरह की गुलामी है, लेकिन मित्रता एक आजादी और बराबरी का अहसास है"। शासक वर्ग के लोगों के बीच में मित्रता को लेकर काफी कुछ चर्चा हुआ करती थी। यूरोपीय समाज में आत्महत्यायें काफी हुआ करती थीं। आज के आधुनिक जापान में जितनी आत्महत्यायें प्रतिवर्ष होती हैं, उससे अधिक आत्महत्यायें यूरोप में (खासकर रोमन समय में) हुआ करती थीं।

यूरोप की पूरी की पूरी सभ्यता नगरीय मानी जाती थी। यूरोप में तीसरी शताब्दी तक जो से ही संचालित होते रहे। सभी साम्राज्यों में विकास की दिशा शहरीकरण वाली ही रही। जितने भी शासक वर्ग और में ही रहा करते थे। सभी जमींदार वर्ग के लोग भी शहरां में ही रहते थे। गार्मियों के दिनों में ये जमींदार अपने–अपने गाँवां या कसबों में जाया करते थे, की अचल सम्पत्ति (खेत–खलिहान, बाग–बगीचे आदि) हुआ करती थी। ये जमींदार अपनी स्टेट में पहुँचकर अपनी बहादुरी जताने के लिये पशुओं का शिकार किया

करते थे। यह शिकार करना बहादुरी दिखाने के लिये जरूरी माना जाता था। इन जमींदारों की स्टेट में प्राकृतिक सुन्दरता का काफी ध्यान रखा जाता था। ज्यादातर जमींदारों की स्टेट एक छोटी मोटी सेंन्चुरी (Sancthuary) के जैसी हुआ करती थी। इन स्टेट में बाग–बगीचे, पहाड़–पहाड़ियाँ, झरने आदि सभी हुआ करते थे। शहरों की परिभाषा क्या होती थी? ऐसे स्थान जहाँ पर बड़ी–बड़ी इमारतें, बड़ी–चौड़ी सड़कें, चौराहें एवं उन चौराहों पर लगे हुए फव्वारे, छोटे–छोटे बाग बगीचे, सार्वजनिक स्नानघर और सड़कों पर आने–जाने वालों की भीड़–भाड़ हो, ऐसे ही स्थानों को शहर कहा जाता था। शहरों में नाट्यगृह, व्यायामशाला, थियेटर आदि भी जरूर हुआ करते थे। इन शहरों में शासक वर्ग के लोगों के घर तो बहुत बड़े–बड़े बंगलों जैसे हुआ करते थे, लेकिन साधारण वर्ग के घर झुग्गी–झोंपड़ियों जैसे या आज की जेलों में कैदियां के लिये बनाई गयी बैरकों जैसे हुआ करते थे। रोमन समय में शासक वर्ग, जमींदार वर्ग, व्यापारी वर्ग के किसी भी व्यक्ति को गाँव में रहना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता था। साधारण वर्ग के लोगों को भी शहरों में रहना पसंद ही आता था, भले ही उन्हें झुग्गी झोपड़ियों में रहना पड़े। सभी शहरां के चारों ओर चाहरदीवारी–परकोटा हुआ करता था। शहर के चारों ओर की दीवारें लोगों के मन में एक खास किस्म का सुरक्षाबोध पैदा करती थीं। शहरों के चारों ओर की चाहरदीवारी के दरवाजे रात में बन्द कर दिये जाते थे। चाहरदीवारी को शहर की सुन्दरता भी माना जाता था। शहरों को दुश्मनों और चोर–उचक्कों से बचाने के लिये चाहरदीवारी पर हमलों के समय भी यह चाहरदीवारी सुरक्षा का कार्य करती थी। यूरोपीय समाज में सम्राटां द्वारा दूसरे राज्यों पर हमलों के समय में पर ही हमले सबसे पहले हुआ करते थे। चाहरदीवारों के दरवाजां में ताले भी लगाये जाते थे। लेकिन इन सबके बावजूद शहरों में चोरियाँ होती थीं। चाहरदीवारी के दरवाजां के तालों को खोल लिये जाने की घटनाएं भी होती थीं। चोरी करने वाले सभी तरीकों का इस्तेमाल किया करते थे। चाहरदीवारी के दरवाजां पर रक्षा के लिये खड़े होने वाले रक्षकों की मिलीभगत से भी ताले खोले जाते थे और फिर चोरियाँ होती थीं। इन सबके बावजूद शहर के चारों ओर की दीवार को शिष्टाचार एवं सभ्यता का प्रतीक माना जाता था।

यूरोपीय समाज में एक और शिष्टाचार और सभ्यता का प्रतीक (शासक वर्ग के बीच में) दावत देने का या भोज देने का हुआ करता था। शासक वर्ग के लोग अक्सर एक–दूसरे को या अपने मित्रां को दावतें दिया करते थे। ये अधिकांश दावतें रात्रिभोज के रूप में हुआ करती थीं। शासक वर्ग के लोग ये दावतें अपनी शान बढ़ाने के लिये अपनी सफलताओं को दिखाने या बताने के लिये या कोई खुशी दर्शाने के लिये दिया करते थे। रोमन सम्राज्य के समय में तो इन दावतों का बहुत अधिक महत्त्व हुआ करता था। रोमन समय में शासक वर्ग के शानदार महलों जैसे घरों को विला (Villa) कहा जाता था। इन्हीं शानदार महलों जैसे घरों के एक हिस्से में गुलाम, नौकर–चाकर आदि रहा करते थे। लेकिन नौकर–चाकरों को जिस हिस्से में रखा जाता था, घर का वह हिस्सा आज की जेलों के बैरकों जैसा ही हुआ करता था। किसी भी सम्राट का महल ही उसकी सभी गतिविधियां का केन्द्र हुआ करता था। उसी महल से सारा प्रशासन चला करता था। सम्राट की अदालत भी उसके महल में ही लगा करती थी। जब शाम हो जाती थी तब सम्राट के सारे राजकीय और प्रशासनिक कार्य बन्द हो जाते थे। शाम के बाद सम्राट अपने नजदीकी यार–दोस्तों से ही मिला करता था। या फिर सम्राट शाम का समय

उनके साथ गुजारता था, जिन्हें वह सम्राट पसन्द करता था। शाम के बाद का समय सम्राट का निजी समय माना जाता था। शाम के बाद का सम्राट का समय खाने की मेज पर ही अधिकांश गुजरता था। अधिकांश सम्राटां के लिये यह शाम का समय रंगरेलियाँ मनाने का ही होता था। सम्राट के साथ रंगरेलियाँ मनाने वाले लोग भी पूरा मजा लेते थे। पूरे यूरोपीय समाज में शाम के बाद का समय सभी का निजी समय ही माना जाता था। समाज का गरीब से गरीब आदमी भी शाम का समय अपने घर के खाने की मेज पर ही बिताता था। शाम की रंगरेलियाँ मनाते समय सभी कुछ भूल जाने की परम्परा हुआ करती थी। लोगों को सिर्फ अपना व्यवसाय और ओहदा ही याद रहता था, बाकी कुछ नहीं।

खाने की मेज पर बैठने के और दावतों के भी कुछ कायदे–कानून–नियम हुआ करते थे। और इन नियमों का कड़ाई से पालन करना होता था। इसी तरह काफी कुछ औपचारिकतायें खाने की मेज पर निभानी होती थीं। खाने की मेज पर कौन कहाँ बैठेगा, इसके बहुत कड़े नियम होते थे। ऐसा नहीं कि जहाँ मर्जी आये और कहीं भी कोई बैठ जाये। खाने की मेज पर दिन भर के तनाव से मुक्त होते हैं, ऐसी मान्यता सभी यूरोपीय लोगों के मन में हुआ करती थी। सम्राट सभी तरह की रंगरेलियों से तृप्त होकर शराब आदि पीने के बाद ही भोजन करता था। यह भोजन काफी लम्बा (देर तक) हुआ करता था। भोजन की मेज काफी ऊँची हुआ करती थी, जिस पर विभिन्न किस्म के बरतन रखे होते थे, जिनमें भोजन रखा एवं परोसा जाता था। खाने की मेज के चारों ओर कुर्सियाँ (गद्देदार) रखी जाती थीं। इन कुर्सियों को 'डाइनिंग कोच' कहा जाता था। इन डाइनिंग कोच पर बैठना एक कड़े नियम के तहत होता था। यदि किसी खाने की मेज पर डाइनिंग कोच नहीं हों, तो फिर दावत ही नहीं मानी जाती थी। जब दावत नहीं होती थी और सामान्य भोजन हुआ करता था, तब घर की माँ ही सबसे पहले घर के पिता को भोजन परोसती थी। सामान्यरूप से घर के प्रमुख व्यक्ति को ही भोजन सबसे पहले परोसा जाता था। भोजन मसालेदार हुआ करता था। भोजन में कई तरह के सॉस, जो काफी जटिलता से बनते थे, हुआ करते थे। सामान्य भोजन और दावतों के भोजन में मांस अनिवार्य रूप से हुआ करता था। मांस को कई बार उबाला जाता था। कई बार मांस को भूना भी जाता था। कई बार मांस को दम देकर भी पकाया जाता था। मान्यता यह थी कि मांस को कई बार उबाल लेने से उसमें से खून निकल जाता है। भोजन में मीठा एवं खट्टा एवं थोड़ा–बहुत मसालेदार तीनो तरह का जायका होता था। भोजन में कई तरह के स्वाद वाली शराब हुआ करती थी। सामान्यरूप से शराब पानी के साथ मिलाकर ही पी जाती थी। लेकिन कई लोग बिना पानी के भी शराब पिया करते थे। पूरे भोजन के क्रम में शराब पीने का दौर सबसे लम्बा और सबसे अधिक देर तक चलता था। पहले कुछ खाया जाता था उसके बाद ही शराब पीने का दौर शुरू होता था। लेकिन जब शराब पी जाती थी, तब उसके साथ कुछ खाया नहीं जाता था। पहले बिना शराब पिये खाया जाता था और फिर बिना कुछ खाये शराब पी जाती थी। यह नियम दावतों में बहुत कड़ाई से पालन किया जाता था। दावतों का आयोजन एक उत्सव के रूप में हुआ करता था। सामान्य रूप से जो भी व्यक्ति दावत का आयोजन करता था, उसे अपने स्वयं की ताकत और खर्चे पर ही यह आयोजन करना होता था। दावतों में जाने वाले लोग अपने–अपने सिर पर विशेष किस्म के टोप या टोपियाँ पहनकर जाया करते थे। इन टोपों का आकार–प्रकार पहनने वाले की हैसियत पर निर्भर होता था। दावतों में जाने वाले लोग अपनी–अपनी हैसियत

के अनुसार सेंट, इत्र आदि लगाकर ही दावतों में जाया करते थे। इन दावतों में शामिल होने वालों का जोश उतना ही अधिक हुआ करता था, जैसा जोश शादी के बाद की पहली रात (सुहागरात) को हुआ करता था।

दावतें सिर्फ भोजन, शराब और रंगरेलियों तक ही सीमित नहीं रहती थीं, बल्कि उससे कुछ अधिक होती थीं। कई बार इन दावतों में विचार–विमर्श भी हुआ करते थे और दावतों में शामिल होने वाले मेहमान अलग–अलग विषयों पर अपनी राय प्रकट करते थे। ये विषय सामान्य, रोजमर्रा के भी हुआ करते थे और कई बार विशेष विषयों पर भी चर्चा हुआ करती थी। कई बार दावतों में शामिल होने वाले मेहमान अपने–अपने जीवन के विषय पर भी चर्चा किया करते थे। मेहमानों को अपनी जीवन कहानी सुनाने का काफी आकर्षण रहता था। यदि दावत देने वाले के पास कोई दार्शनिक या अध्यापक होता था, तो उसे भी बोलने का अवसर दिया जाता था। इन दावतों के समय पर संगीत आदि भी रहता था। संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य तीनो ही दावतों के समय पर आयोजित हुआ करते थे। सामान्य रूप से गायन और नृत्य का ही आयोजन अधिकतर दावतों में रहता था। इन दावत समारोहों के लिये व्यावसायिक संगीतज्ञों को पैसा देकर बुलाया जाता था। इन दावतां को धीरे–धीरे सामाजिक अभिव्यक्ति का भी एक जरिया माना जाने लगा। धीरे–धीरे इन दावतों में गंभीर किस्म के परिसंवाद एवं विचारगोष्ठी आयोजित होने लगे। जिन दावतों में परिसंवाद आयोजित होते थे, ऐसी दावतों को बहुत प्रतिष्ठित माना जाता था। इन परिसंवादां में ही संस्कृति, इतिहास, दर्शनशास्त्र जैसे विषयों के विद्वान भी आने लगे और गंभीर बहसे होने लगीं। धीरे–धीरे इन दावतों को आयोजित करने वाले कमरे या कक्ष बड़े से बड़े होने लगे और काफी शानदार भी होते गये। धीरे–धीरे इन परिसंवादां के चलते अच्छे लोगों की संगत में रहने का अहसास दावतों का आयोजन करने वालों को होने लगा। धीरे–धीरे समाज के श्रेष्ठि वर्ग के लोगों के मिलने–जुलने का बहाना ये दावतें बनती चली गयीं। समाज के साधारण वर्ग के लोग कम खर्चे और कम तड़क–भड़क वाले तरीकों को एक दूसरे से मिलने के लिये अपनाया करते थे। साधारण वर्ग के लोगों के अलग शराबखाने या मदिरालय हुआ करते थे, जहाँ बैठकर आपसी लोगों के साथ वे शराब पीते थे, एक दूसरे से सुख–दुख की बातें करते थे। साधारण लोगों को आपस में मिलने–जुलने के लिये तीन ही स्थान अधिक होते थे, एक तो मदिरालय–शराबखाना, दूसरा सार्वजनिक स्नानघर, तीसरा नाई की दुकान। कभी–कभी साधारण लोगों की बाजारों में भी मेल–मुलाकातें आपस में हुआ करती थीं। प्रत्येक शहर में काफी अधिक संख्या में शराबघर हुआ करते थे। कई शराबघर ऐसे भी हुआ करते थे, जहां शराब के अतिरिक्त भोजन भी मिलता था और शरीर की भूख मिटाने के लिये वेश्यायें भी मिलती थीं। यदि इन शराबघरों में शासक वर्ग या अभिजात्य वर्ग का कोई व्यक्ति नजर आ जाये तो उसकी सारी इज्जत और प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती थी। साधारण के लिये चलने वाले मदिरालयों को कभी भी सम्मान की नजर से नहीं देखा जाता था। इन शराबघरों को सड़कछाप माना जाता था। यूरोप में लगातार 400 वर्षों तक सम्राट (सरकार) के बीच संघर्ष चलता रहा, इस बात के लिये कि इन शराबघरों में सिर्फ शराब ही लोगों को परोसी जाय, भोजन नहीं। क्योंकि सरकारों (सम्राटां) द्वारा यह माना जाता था कि इन शराबघरों में भोजन करना लोगों के स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं है। सम्राटां की मान्यता हुआ करती थी कि साधारण वर्ग के लोगों को बीमार नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि

साधारण वर्ग के लोगों के बीमार पड़ने से शासक वर्ग और राज्य को काम का नुकसान होता था। क्योंकि साधारण वर्ग के लोग ही मेहनत–मजदूरी का कार्य करते थे और राज्य के उत्पादन को बढ़ाने में मदद करते थे। यूरोपीय समाज में हर उस सार्वजनिक स्थान के बारे में सम्राट (सरकार) के मन में संशय रहता था, जहाँ एक साथ बहुत से लोग एकत्रित होते हों। सम्राटों के मन में इन साधारण लोगों के एक साथ जमा होने पर हमेशा भय रहता था। इसलिये समय–समय पर सरकार द्वारा ऐसे कार्य किये जाते रहते थे जिससे कि सार्वजनिक स्थानों पर एकत्रित होने वाले लोगों के मन में सम्राट (सरकार) का भय बना रहे।

यूरोपीय समाज में एक जैसा व्यापार करने वाले, एक जैसा कारीगरी का काम करने वाले, एक जैसी मेहनत मजदूरी का कार्य करने वाले, एक जैसे देवी–देवताओं को मानने वाले लोगों के संगठन भी हुआ करते थे। इन संगठनों को कॉलिजिया (Collegia) कहा जाता था। इन संगठनों के सदस्य स्वतन्त्र लोग एवं गुलाम लोग दोंनों ही हो सकते थे। सामान्यरूप से प्रत्येक शहर में ऐसा कम से कम एक या अधिक संगठन हुआ ही करते थे। उदाहरण के लिये – किसी शहर में बुनकरों का संगठन होता था, तो दूसरे किसी शहर में लोहारां का संगठन होता था, तो तीसरे किसी शहर में कपड़ा व्यापारियों का संगठन होता था। कुछ शहर जो बहुत बड़े होते थे, वहाँ पर लोहारां, बुनकरां, कपड़ा व्यापारियों के संगठन तीनों ही हुआ करते थे। इसी तरह अन्य कारीगरी का काम करने वालों के संगठन भी होते थे। कई शहरों में हर्क्यूलिस देवता की पूजा करने वालों का संगठन और यरकरी (बुध देवता) की पूजा करने वालों के संगठन भी हुआ करते थे। लेकिन इन सभी संगठनों में महिलायें सदस्य नहीं हो सकती थीं। इन सभी संगठनों में महिलाओं का प्रवेश वर्जित होता था। इन सभी संगठनों की कार्यकारी परिषद हुआ करती थी। संगठन के सदस्यों का आपसी झगड़ों का निपटारा करने के लिए न्यायाधिकारी भी हुआ करते थे। लेकिन इन सभी संगठनों का उद्‌देश्य धार्मिक या व्यावसायिक हितां तक ही सीमित होता था, उससे अधिक कुछ नहीं।